श्री भर्तृहरिविरचितम्
नीतिशतकम्
महेशचन्द्र भारतीय

श्रीभर्तृहरिविरचितम्

नीतिशतकम्

[छात्रोपयोगी, विस्तृत भूमिका, श्लोकान्वय, भाषानुवाद,
समालोचनात्मक टिप्पणी सहित]

सम्पादक—
डॉ० महेशचन्द्र भारतीय
एम० ए० (हिन्दी, संस्कृत, दर्शन)
अध्यक्ष, संस्कृत विभाग
महानन्द मिशन कालिज
गाजियाबाद

साहित्य भण्डार
शिक्षा साहित्य के मुद्रक एवं प्रकाशक
सुभाष बाज़ार, मेरठ-२५०००२

भूमिका

भर्तृहरि

जीवन-चरित:—

जन-श्रुति के आधार पर भर्तृहरि का जीवन-चरित इस प्रकार है :— भर्तृहरि के पिता का नाम गन्धर्वसेन था। भर्तृहरि के एक सौतेला भाई भी था, जिसका नाम विक्रमादित्य था। विक्रमादित्य गन्धर्वसेन की द्वितीय पत्नी जो मालवा की तात्कालिक राजधानी धारा के राजा की पुत्री थी, का पुत्र था। धारा के राजा ने अपने दोनों नातियों को सभी शास्त्रों की स्मृति, नीति, धनुर्वेद, संगीत, नृत्य आदि की—शिक्षा दिलायी थी। उनको यद्यपि दोनों नाती प्रिय थे, किन्तु विक्रम के प्रति उनका प्रेम स्वभावतः अधिक था। उनके कोई पुत्र भी नहीं था। अतः जब उन्होंने देखा कि विक्रम ने काव्य, कला और शास्त्रों की सभी शाखाओं में भली-भांति शिक्षा प्राप्त कर ली है, तो उन्होंने विक्रम को राज्य प्रदान करने का विचार किया और एक दिन उसे बुलाकर अपनी इच्छा व्यक्त की। किन्तु विक्रम ने बड़े भाई के रहते हुए राज्य लेने में अनिच्छा प्रकट की। उन्होंने कहा कि भर्तृहरि को राज्य दिया जावे और वे उनके प्रधानमन्त्री रहकर राज्य की देख-रेख करेंगे। विक्रम की इस उदारता से राजा बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने विक्रम की इच्छानुसार भर्तृहरि को अपने राज्य का राजा बना दिया। विक्रम अपने बड़े भाई के प्रधानमन्त्री बन गये और उन्होंने अपने को पूरी तरह राज्य की देख-रेख में लगा दिया। उन्होंने मालवा की राजधानी भी धारा से बदलकर उज्जैन कर दी। भर्तृहरि ने राजा होते हुए भी राज्य-कार्य से मुख मोड़ कर अपने को स्त्रियों के प्रेम में डुबो दिया। उन्होंने दिन-रात अन्तःपुर में ही बिताने आरम्भ कर दिये और राज्य-कार्य का सारा भार विक्रम के ऊपर छोड़ दिया। विक्रमादित्य ने यद्यपि शासन-कार्य सुचारु रूप से चलाया किन्तु उनको अपने भाई के राज्य-कार्य से विमुख होकर स्त्रियों के प्रेम में डूबने का दुःख था और उन्होंने अपने भाई को

उस मोह से बचाने के लिये अनेक प्रयत्न भी किये। किन्तु इसका फल उल्टा ही हुआ जितना उन्होंने भर्तृहरि को समझाया, भर्तृहरि का मन उनकी ओर से उतना ही फिर गया और धीरे-धीरे दोनों भाई एक-दूसरे के शत्रु बन गये। भर्तृहरि की पत्नियों ने भी विक्रमादित्य के विरुद्ध षड्यन्त्र रचा। भर्तृहरि तो पत्नियों के वश में पूर्णतः थे ही, उनके षड्यन्त्र के चक्कर में आकर उन्होंने विक्रमादित्य के अधिकार छीनकर उनको राज्य से बहिष्कृत कर दिया। विक्रमादित्य ने उज्जैन छोड़कर सारे भारतवर्ष का भ्रमण किया और वे पूर्वी बंगाल में ढाका के निकट पहुँचे जहाँ वे कुछ समय रहे और सम्भवतः वहीं बस गये। इस स्थान का नाम अब भी विक्रमपुर प्रसिद्ध है।

इधर भर्तृहरि और भी अधिक विलास में डूबते चले गये। उन्होंने राज्य कार्य की ओर ध्यान देना बिल्कुल बन्द कर दिया। उनकी प्रजा उनकी इस उपेक्षा से ऊब गई और उसने भी राजा के शासनाधिकारों के प्रति उपेक्षा आरम्भ कर दी। मालवा राज्य में धीरे-धीरे अराजकता और उच्छृङ्खलता फैल गई।

इसी बीच में एक घटना ऐसी घटी जिससे राजा भर्तृहरि को अपनी सर्वप्रिय रानी[1] के विश्वासघात का पूर्ण विश्वास हो गया। कहा जाता है कि एक बार एक ब्राह्मण ने भर्तृहरि को एक दिव्य फल दिया जिसको खाने से अमरता और लक्ष्य यौवन प्राप्त किया जा सकता था। राजा भर्तृहरि अपनी पत्नी को अपने से अधिक प्यार करते थे। अतः उन्होंने इस फल को अपनी पत्नी को ही दे दिया। किन्तु उनकी पत्नी उससे प्रेम न करके किसी और पुरुष से प्रेम करती थी और उसने राजा द्वारा दिये गये उस फल को अपने प्रेमी को दे दिया। उसका वह प्रेमी किसी वेश्या के प्रेम में डूबा हुआ था। अतः उसने उस फल को वेश्या को दे दिया[1]। इस वेश्या के हृदय में राजा भर्तृहरि के प्रति अत्यधिक सम्मान और प्रेम था। अतः इसने उस फल को भर्तृहरि को ही समर्पित कर दिया। राजा ने उस फल को तुरन्त पहिचान लिया और इसके सम्बन्ध में पूछ-ताछ करके उन्होंने अपनी रानी के प्रेम-सम्बन्धों को जान लिया। जब रानी को यह

१. इस रानी के नाम के विषय में मतभेद है। इसके विभिन्न नाम-अनङ्गसेना, पिङ्गला, पद्माक्षी और भानमति बतलाये गये हैं।

पता चला कि राजा उसके अनुचित सम्बन्धों के बारे में जान गये हैं तो उसने महल से कूद कर आत्महत्या कर ली। भर्तृहरि को इस घटना से बहुत चोट पहुँची, किन्तु शीघ्र ही वे उसे भुलाकर दूसरी पत्नी 'पिङ्गला' में पहले की तरह ही आसक्त हो गये।

एक बार भर्तृहरि मृगया के लिये गये हुए थे। उनके एक शिकारी ने एक मृग का शिकार किया, किन्तु उसी समय शिकारी को एक सर्प ने काट लिया और वह भी निर्जीव होकर वहीं गिर पड़ा। राजा ने देखा कि उसी समय मृग की पत्नी मृगी वहाँ पर आई और अपने पति मृग के शव पर मृत होकर गिर पड़ी। इसी प्रकार शिकारी की पत्नि को जब अपने पति की मृत्यु का पता चला तो वह भी स्वयं चिता तैयार करके अपने पति के साथ उसमें भस्म हो गई। राजा आश्चर्य चकित होकर घर गये और उन्होंने अपनी रानी पिङ्गला से यह सारा वृत्तान्त सुनाया किन्तु रानी ने शान्तिपूर्वक उत्तर दिया कि इसमें कोई विचित्रता नहीं है। सच्ची सती तो बिना अग्नि का आश्रय लिये ही अपने को स्वयं भस्म कर सकती है। राजा उस समय तो शान्त हो गये, किन्तु उन्होंने पत्नी की पति-भक्ति की परीक्षा लेने का निश्चय कर लिया। एक बार फिर वे शिकार के लिये गये और वहाँ से अपने एक सेवक द्वारा खून से लथपथ कपड़ों को भिजवा कर रानी से यह कहला भेजा कि राजा व्याघ्र द्वारा मारे गये। रानी ने इस समाचार को सुनकर राजा के खून से सने कपड़े ले लिये और उन्हें पृथिवी पर रखकर अन्तिम बार प्रणाम किया और वहीं समाप्त हो गई। राजा को जब इस हृदय विदारक घटना का पता लगा तो उन्होंने शोक से अभिभूत होकर महल का त्याग कर दिया। इसके उपरान्त वन में जाकर उन्होंने तपस्वी जीवन व्यतीत किया। वहीं पर उनकी भेंट योगी गोरखनाथ से हुई, जिन्होंने उन्हे योग की दीक्षा दी। भर्तृहरि ने योगाभ्यास करके अमरत्व प्राप्त किया।

भर्तृहरि के सम्बन्ध में यह कथा केवल जन-श्रुति पर ही आधारित है। इसको पुष्ट करने के लिये कोई सबल प्रमाण उपलब्ध नहीं है। कोई प्रमाण इस प्रकार का भी उपलब्ध नहीं है जिससे यह सिद्ध हो कि भर्तृहरि विक्रमादित्य के भाई थे। भर्तृहरि स्वयं इस विषय में मौन हैं। कोई बाह्य प्रमाण भी इस

प्रकार का उपलब्ध नहीं होता जो उन्हें विक्रम संवत् के संस्थापक विक्रमादित्य से जोड़ सके । भर्तृहरि की रचनाओं से इतना पता अवश्य चलता है कि वे राजकीय जीवन से भली-भाँति परिचित थे । भर्तृहरि 'निर्वेदनाटक' में उनको राजा बतलाया गया है । भर्तृहरि और राजा गोपीचन्द से सम्बन्धित कुछ लोग-प्रचलित नाटक भर्तृहरि को गोपीचन्द का मामा और विक्रमादित्य का भाई बतलाते हैं । गोपीचन्द की मां का नाम मैनावती बताया गया है । किन्तु ये सभी प्रमाण अकाट्य नहीं हैं और भर्तृहरि के राजा होने और विक्रमादित्य के भाई होने की सम्भावना मात्र को व्यक्त करते हैं । उनकी रचनाओं (नीतिशतक, शृङ्गारशतक और वैराग्यशतक) से इस बात की भी सम्भावना व्यक्त होती है कि उन्होंने राजकीय-जीवन के उपभोग के साथ-साथ या उसके उपरान्त वैराग्य भी प्राप्त किया ।

भर्तृहरि का स्थिति काल—

यह ठीक-ठीक कहना बहुत कठिन है कि भर्तृहरि का स्थिति-काल क्या रहा होगा ? जैसा पहले कहा जा चुका है जनश्रुति उन्हें विक्रम संवत् के संस्थापक विक्रमादित्य का बड़ा भाई मानती है । यदि इस जनश्रुति को सत्य भी मान लिया जाय तो भी विक्रमादित्य के समय के विषय में कुछ निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता । अभी तक यह निश्चित नहीं हो पाया है कि प्रथम शताब्दी ई० पू० में, जो विक्रम संवत् के आरम्भ होने का समय है, कोई विक्रमादित्य नाम के राजा थे या नहीं थे ।

भर्तृहरि द्वारा रचित श्लोक अनेक ग्रन्थों में उद्धृत हुए है जिनमें अभिनवगुप्त का 'ध्वन्यालोक' केशवमिश्र का अलङ्कारशेखर, रुय्यक का 'अलङ्कार-सर्वस्व', क्षेमेन्द्र के 'औचित्य विचारचर्चा, 'कविकण्ठाभरण' और 'सुवृत्ततिलक', मम्मट का 'काव्यप्रकाश', गोविन्द का 'काव्य-प्रदीप,' वाग्भट्ट का काव्यानुशासन,' नमिसाधु का 'काव्यालङ्कारटीका,' अप्पयदीक्षित का 'कुवलयानन्द,' धनञ्जय का 'दशरूपावलोक,' आनन्दवर्धन का 'ध्वन्यालोक', विष्णुशर्मा का 'पञ्चतन्त्र' बल्लाल का 'भोजप्रबन्ध,' सेवाराम का 'रसरत्नहार', शार्ङ्गधर का शार्ङ्गधरपद्धति,' 'भोजराज,' का सरस्वती कण्ठाभरण,' वल्लभदेव का 'सुभाषितावलि', जल्हण का 'सूक्तिमुक्तावली' और नारायण का हितोपदेश' आदि हैं । इनमें अपेक्षाकृत प्राचीन लेखकों में ध्वन्यालोक के रचयिता आनन्द-

वर्धन हैं जो राजा अवन्तिवर्मा (८५५–८८४ ई०) के शासनकाल में हुए थे, अतः जिनका समय नवीं शताब्दी ई० का उत्तरार्ध है। इससे सिद्ध होता है कि भर्तृहरि नवीं शताब्दी ई० के पूर्व रहे होंगे। विष्णुशर्मा द्वारा लिखित पञ्चतन्त्र में भर्तृहरि-रचित, श्लोक हमें उपलब्ध होते हैं। पञ्चतन्त्र का प्रथम अनुवाद पहलवी भाषा में बादशाह खुसरू अनुशेरवां ५३१–५७९ ई० के हुक्म से किया गया था। अतः पञ्चतन्त्र का समय निश्चित रूप से छठी शताब्दी के पूर्व है। पञ्चतन्त्र में महाभारत, कामन्दकीय नीतिसार, मनुस्मृति, रामायण और चाणक्य के भी उद्धरण हैं। इसके अतिरिक्त दो श्लोक शिशुपालवध और नागानन्द से भी हैं, किन्तु ये प्रक्षिप्त प्रतीत होते हैं। चाणक्य का समय ३२५ ई० पू० के आस-पास का है। अतः पञ्चतन्त्र इसके बाद ही लिखा गया है। 'दीनार' शब्द के प्रयोग से इसकी रचना ईसा के बाद की ही सिद्ध होती है। ऐतिहासिक प्रमाणों से पता चलता है कि ईसा द्वितीय शताब्दी के आस-पास राजसभाओं में संस्कृत को प्रधानता मिलने लगी थी। अतः ऐसे ग्रन्थों की आवश्यकता पड़ी होगी जो संस्कृत का ज्ञान भी करा सके और राजनीति की भी शिक्षा दे सके। ऐसे समय में ही सम्भवतः पञ्चतन्त्र की रचना हुई होगी। अतः पञ्चतन्त्र का समय दूसरी, तीसरी शताब्दी ई० लगभग प्रतीत होता है। भर्तृहरि का समय इसके पूर्व होना चाहिये। अतः यदि प्रथम शताब्दी ई० पू० में विक्रमादित्य की स्थिति सिद्ध हो जाती है तो भर्तृहरि का समय भी जनश्रुति के अनुसार उसी समय माना जा सकता है।

भर्तृहरि की रचनाएँ :

भर्तृहरि के नाम से सामान्यतः निम्नलिखित रचनाएं प्रचलित हैं—

(१) तीन शतकः—नीतिशतक, शृङ्गारशतक और वैराग्यशतक।

(२) वाक्यपदीय।

(३) भट्टिकाव्य।

इसमें लगभग सभी विद्वान् एकमत हैं कि 'भट्टिकाव्य' के रचयिता भर्तृहरि (या भट्टि) और शतकों के रचयिता भर्तृहरि भिन्न-भिन्न हैं। हाँ, शतकों के और 'वाक्यपदीय' के रचयिता को प्रायः एक ही माना जाता है। 'वाक्यपदीय' एक व्याकरण का ग्रन्थ है और अपने क्षेत्र में अत्यन्त प्रसिद्ध है।

'नीतिशतक' में अनेक नैतिक सिद्धान्तों को प्रतिपादित किया गया है। ये सभी सिद्धान्त धर्म और जाति से परे मनुष्य के गम्भीर सांसारिक अनुभव के सार को अत्यन्त सरल और सुबोध शैली में प्रस्तुत करते हैं। विद्या, वीरता, सज्जनता, मूर्खता, साहस, मैत्री आदि का अत्यन्त हृदयग्राही स्वरूप चित्रित किया गया है। ये संसार के किसी भी साहित्य के सूक्ति-भण्डार के आभूषण बनाने में समर्थ हैं।

'शृङ्गारशतक' में सुललित मधुर शैली में स्त्रियों के जादूमय आकर्षण को चित्रित किया गया है। किन्तु धीरे-धीरे कवि ने इस आकर्षण की अस्थिरता को भी चित्रित कर दिया है। "सच पूछा जाय तो शृङ्गारशतक में पहली शृङ्गार-रस के आकर्षण का चित्रण किया गया है, किन्तु धीरे-धीरे उसकी अस्थिरता दिखलाकर शान्तरस की तुलना में उसकी तुच्छता प्रकट की गई है।"[1]

"वैराग्यशतक" में कवि ने संसार की निस्सारता का मार्मिक चित्रण किया है। संसार की विषमता, भोगतृष्णा की विभीषिका, यौवन की अस्थिरता आदि दिखलाकर कवि ने पाठक को वैराग्य की ओर उन्मुख किया है।

प्रस्तुत संस्करण—

नीतिशतक का प्रस्तुत संस्करण विद्यार्थियों की आवश्यकता को देखते हुए प्रकाशित किया गया है। इसमें मूल श्लोकों के साथ उसका अन्वय, अनुवाद और व्याख्यात्मक व व्याकरणात्मक टिप्पणियाँ भी दी गई हैं। अनुवाद में शब्दानुवाद (literal translation) की शैली को अपनाया गया है, क्योंकि विद्यार्थियों से इसी की अपेक्षा की जाती है। टिप्पणियों में कठिन शब्दों के अर्थ देने के अतिरिक्त समासों को खोल दिया गया है और शब्दों की व्याकरण के अनुसार व्युत्पत्ति भी संक्षेप में दे दी गई है। आशा है यह संस्करण विद्यार्थियों की आवश्यकताओं को पूर्ण करेगा।

—०—

१. चन्द्रशेखर पाण्डेय तथा शान्तिकुमार नानूराम व्यास : संस्कृत साहित्य की रूपरेखा (१९६४ ई०) पृ० ३४९।

मङ्गलाचरणम्

—:o:—

दिक्कालाद्यनवच्छिन्नानन्तचिन्मात्रमूर्तये ।
स्वानुभूत्येकमानाय नमः शान्ताय तेजसे ॥१॥

अन्वयः—दिक्कालाद्यनवच्छिन्नानन्तचिन्मात्रमूर्तये स्वानुभूत्येकमानाय शान्ताय तेजसे नमः ।

अनुवाद—दिशा और काल आदि से असीमित (अतः) अनन्त, चैतन्यमात्र स्वरूप वाले, (केवल) एक स्वानुभूति (रूप) प्रमाण वाले, शान्त तेजोरूप (परमात्मा) को नमस्कार है ।

टिप्पणी—संस्कृत काव्यों की यह परम्परा है कि ग्रन्थ की निर्विघ्न समाप्ति के लिये लेखक आरम्भ में मङ्गलाचरण करता है, जिसमें प्रायः किसी देवता की स्तुति होती है । भर्तृहरि भी इसी हेतु मङ्गलाचरण के रूप में परब्रह्म परमात्मा की स्तुति कर रहे हैं ।

दिक्काला०—दिशश्च कालादयश्च तैरनवच्छिन्ना (अतः) अनन्ता चिन्मात्रा मूर्तिर्यस्य तस्मै । जिसका स्वरूप दिक् (Space) काल आदि से असीमित (अतः) अनन्त और चेतनमात्र है । **स्वानु०**—स्वस्यानुभूतिः स्वानुभूति, स्वानुभूतिरेकं मानं यस्य तस्मै, स्वानुभूति (intuition) ही जिसका एक प्रमाण है अर्थात् जिसको केवल स्वानुभूति द्वारा ही जाना जा सकता है । **मान**—प्रमाण अर्थात् ज्ञान का साधन । स्वानुभूत्येकमानाय के स्थान पर स्वानुभूत्येकसाराय भी पाठ है इसका विग्रह होगा, स्वानुभूतिरेकः सारः यस्य तस्मै, स्वानुभूति ही जिसका एक सार है । **नमः**—नमस्कार है; नमः के योग में चतुर्थी विभक्ति का प्रयोग है । द्वितीय पंक्ति. (तृतीय और चतुर्थ चरण के स्थान पर दूसरा पाठ है—**अमूर्तये नमस्तस्मै गुणातीतगुणात्मने** । **अमूर्तये**—नास्ति

मूर्तिर्यस्य तस्मै, जिसका कोई शरीर (मूर्ति) नहीं है, उसको। गुणा०—गुणेभ्योऽतीतः गुणातीतः तस्मै, गुणा एवात्मा यस्य तस्मै च जो (सत्त्व, रजस्, तमस्,) गुणों से परे हैं (किन्तु फिर भी) गुणस्वरूप है, अर्थात सद्गुणों के स्वरूप वाले हैं। अनुष्टुप् छन्द।

यां चिन्तयामि सततं मयि सा विरक्ता।
साऽप्यन्यमिच्छति जनं स जनोऽन्यसक्तः।
अस्मत्कृते च परिशुष्यति काचिदन्या
धिक् तां च तं च मदनं च इमां च मां च ॥२॥

अन्वयः—यां सततं चिन्तयामि सा मयि विरक्ता (अस्ति), सा अपि अन्य जनम इच्छति, स जनः अन्यसक्तः, अस्मत् कृते च काचिद् अन्या परिशुष्यति। तां च तं च मदनं च इमां च मां च धिक्।

अनुवाद—जिस (स्त्री) के विषय में, मैं निरन्तर सोचता रहता हूँ वह मेरे प्रति विरक्त है (अर्थात् मुझसे प्रेम नहीं करती), वह भी दूसरे (किसी) व्यक्ति को चाहती है। वह (पुरुष) अन्य (किसी स्त्री) के प्रति आसक्त है। कोई अन्य (स्त्री) मेरे लिये व्याकुल है। उस (स्त्री) को, उस (पुरुष) को, कामदेव को, इस (स्त्री) को और मुझको धिक्कार है।

टिप्पणी—राजा भर्तृहरि के विषय में यह प्रचलित है कि वे अपनी पत्नी से बहुत प्रेम करते थे और उसे उन्होंने अमरता और अनन्त यौवन प्रदान करने वाला एक फल उपहार के रूप में दिया। वह स्त्री भर्तृहरि से प्रेम न करके किसी और व्यक्ति से प्रेम करती थी, अतः उसने वही उपहार अपने प्रेमी को दे दिया। किन्तु उसका प्रेमी किसी अन्य वेश्या से प्रेम करता था और उसने इस उपहार को अपनी प्रेमिका को दे दिया। वह वेश्या राजा भर्तृहरि से प्रेम करती थी, अतः इसने वही उपहार लाकर राजा भर्तृहरि को दे दिया। इस प्रकार भर्तृहरि का दिया हुआ उपहार फिर उनके पास वापस आ गया और

उन्हें सबके प्रेम-सम्बन्धों के विषय में ज्ञात हो गया। इस सबको देखकर उन्हें उन सभी स्त्री-पुरुषों के प्रति, कामदेव के प्रति (जो इन सभी सम्बन्धों का कारण था) और अपने प्रति विरक्ति हो गई। अतः इस श्लोक में उन्होंने इन सबको धिक्कारा है।

विरक्ता—विरागयुक्त, प्रेम न करने वाली, वि√रञ्ज्+क्त+टाप्। **अन्यसक्तः**=अन्ये सक्तः, अन्य (स्त्री) में आसक्त। **सक्त**=सञ्ज्+क्त। **परिशुष्यति**—सूखति है, व्याकुल होती है, **मदन**=कामदेव, √मद्+णिच्+ल्यु। धिक्' के योग में द्वितीया विभक्ति का प्रयोग है—धिगुपर्यादिषु त्रिषु'। वसन्ततिलका छन्द। उक्ता वसन्ततिलकातभजाजगौगा।

अज्ञः सुखमाराध्यः सुखतरमाराध्यते विशेषज्ञः।
ज्ञानलवदुर्विदग्धं ब्रह्माऽपि च तं नरं न रञ्जयति ॥३॥

अन्वयः—अज्ञः सुखम् आराध्यः, विशेषज्ञः सुखतरम् आराध्यते, ज्ञानलव-दुर्विदग्धं च तं नरं ब्रह्मा अपि न रञ्जयति।

अनुवाद—न जानने वाला (मूर्ख) सरलता से प्रसन्न किया जा सकता है; विद्वान् और अधिक सरलता से प्रसन्न किया जाता है, परन्तु (च) ज्ञान के लेश (=थोड़े से अंश) से (अपने को) पण्डित मानने वाले उस (अभिमानी) मनुष्य को ब्रह्मा भी प्रसन्न नहीं कर पाता।

टिप्पणी—**अज्ञः**=न जानाति इति अज्ञः, न√ज्ञा+क, न जानने वाला। **सुखम्**=सुख के साथ, सरलता से (क्रिया विशेषण)। **आराध्यः**=प्रसन्न करने योग्य, प्रसन्न किया जा सकता है, आ√राध्+ण्यत्। **विशेषज्ञः**=विशेषण जानाति इति विशेषज्ञः, जो बहुत अधिक जानता हो, विद्वान् विशेष√ज्ञा+क +पुंल्लिग, प्रथमा वि०, एकवचन। **ज्ञान०**=ज्ञानस्य लवेन (अंशेन) दुर्विदग्धम् (पण्डितम्मन्यम्), ज्ञान के थोड़े से अंश को प्राप्त कर जो अपने को पण्डित समझने लगता है। **दुर्विदग्धं**=दुर् वि√दह्+क्त। **तं**=उस

(अभिमानी मनुष्य) को। रञ्जयति=प्रसन्न कर पाता है; √रञ्ज्+लट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन। आर्या छन्द।

प्रसह्य मणिमुद्धरेन्मकरवक्त्रदंष्ट्राङ्कुरात्
समुद्रमपि सन्तरेत् प्रचलदूर्मिमालाकुलम्।
भुजङ्गमपि कोपितं शिरसि पुष्पवद्धारयेत्
न तु प्रतिनिविष्टमूर्खजनचित्तमाराधयेत् ॥४॥

अन्वयः—(पुरुषः) मकर-वक्त्र-दंष्ट्राङ्कुरात् प्रसह्य मणिम् उद्धरेत्, प्रचलद्-ऊर्मि-मालाकुलं समुद्रम् अपि सन्तरेत्, कोपितम् अपि भुजङ्गं शिरसि पुष्पवद् धारयेत्, प्रतिनिविष्टमूर्खजनचित्तं तु न आराधयेत्।

अनुवाद—(मनुष्य) चाहे मगर के मुख की डाढ़ की नोक से बलपूर्वक मणि को निकाल ले, चाहे चलती हुई लहरों के समूह से व्याप्त समुद्र को भी तैरकर पार कर ले, चाहे क्रुद्ध किये गये सर्प को भी सिर पर पुष्प के समान धारण कर ले, किन्तु मूर्ख मनुष्य के हठी चित्त को मना नहीं सकता।

टिप्पणी—मकर०=मकरस्य वक्त्रे (मुखे) (स्थितायाः) दंष्ट्रयाः अङ्कुरः (शिखरः) तस्मात्, मगर के मुख में स्थित दाढ़, की नोक से। वक्त्र=वक्ति अनेन √वच्+त्र, मुख। दंष्ट्रा=दाढ़, √दंश+ष्ट्रन्। अङ्कुर=नोक। प्रसह्य=बलपूर्वक, प्र√सह्+ल्यप्। प्रचल०=प्रचलन्तीभिः ऊर्मिमालाभिः। आकुलम्, चलती हुई तरङ्गों के समूह से व्याप्त। सन्तरेत्=पार कर लें, सम्√तॄ+विधिलिङ्, प्रथम पु०, एकवचन। कोपितम्=कुपित किये गये, √कुप्+णिच्+क्त, द्वितीया वि० एकवचन। भुजङ्गम्=सर्प को, भुजं

(वक्रं) गच्छति; भुज् √गम् + खच् + पुंल्लिग, प्रथमा वि०, एकवचन। प्रति० प्रतिनिविष्टं (साग्रहं) मूर्खजनस्य चित्तम्, मूर्ख मनुष्य के हठी चित्त को; अथवा प्रतिनिविष्टः यः मूर्खजनः तस्य चित्तम् हठी मूर्ख मनुष्य के चित्त को। प्रतिनिविष्ट=साग्रह, हठी; प्रति, नि √विश् + क्त। आराधयेत्=मना सकता है, प्रसन्न कर सकता है; आ √राध् + विधिलिङ्ग प्रथम पुरुष, एकवचन। पृथिवी छन्द।

लभेत सिकतासु तैलमपि यत्नतः पीडयन्
पिबेच्च मृगतृष्णिकासु सलिलं पिपसार्दितः।
कदाचिदपि पर्यटञ्छशविषाणमासादयेत्
न तु प्रतिनिविष्टमूर्खजनचित्तमाराधयेत् ॥५॥

अन्वयः—(पुरुषः) यत्नतः पीडयन् सिकतासु अपि तैलं लभेत, पिपासार्दितः च मृगतृष्णिकासु सलिलं पिबेत्, पर्यटन् कदाचित् शशविषाणाम् अपि आसादयेत्; प्रतिनिविष्ट मूर्खजन चित्तं तु न आराधयेत्।

अनुवाद—मनुष्य प्रयत्नपूर्वक दबाता हुआ (पेरता हुआ) चाहे बालू में तेल प्राप्त कर ले, प्यास से व्याकुल होकर चाहे मृगतृष्णाओं में (भी) जल पीले, घूमता हुआ चाहे कभी खरगोश के सींग को भी प्राप्त करले, किन्तु मूर्ख मनुष्य के हठी चित्त को मना नहीं सकता।

टिप्पणी—यत्नतः=यत्नपूर्वक। पीडयन्=दबाता हुआ, पेरता हुआ √पीड् + शतृ + पुंल्लिग, प्रथमा वि०, एकवचन। सिकतासु=बालू में। पिपासा०=पिपासया अर्दितः (व्याकुलः) प्यास से व्याकुल। पिपासा=पा + सन् + अ + टाप्। अर्दितः=अर्द् + क्त। मृगतृष्णिकासु=मृगाणां तृष्णा यत्र इति मृगतृष्णिका, तासु=मृगतृष्णिकासु मृगमरीचिकाओं में;

रेगिस्तान में धूप से व्याकुल होकर मृग प्रायः जल की खोज में इधर-उधर भटकता है और दूर पर फैला हुआ बालू भी उसे लहराता हुआ जल दिखाई पड़ता है। बालू में हुए इस जल के भ्रम को मृगतृष्णा या मृगमरीचिका (mirage) कहते हैं। यह भ्रम मनुष्यों को भी होता है। पर्यटन्=घूमता हुआ; परि√अट्+शतृ, पुल्लिग, प्रथमा वि० एकवचन। शश०=शशस्य विषाणम् खरगोश के सींग को शशविषाण शब्द का प्रयोग असम्भव वस्तु के लिये होता है। आसादयेत्=प्राप्त कर ले। प्रति=देखिये ऊपर के श्लोक की टिप्पणी। पृथिवी छन्द।

व्यालं बालमृणालतन्तुभिरसौ रोद्धुं समुज्जृम्भते
छेत्तुं वज्रमणीञ्छिरीषकुसुमप्रान्तेन संनह्यते।
माधुर्यं मधुबिन्दुना रचयितुं क्षाराम्बुधेरीहते
नेतुं वाञ्छति यः खलान् पथि सतां सूक्तैः सुधास्यन्दिभिः ॥६॥

अन्वय—असौ बाल-मृणालतन्तुभिः व्यालं रोद्धुं समुज्जृम्भते, शिरीष-कुसुम प्रान्तेन वज्र-मणीन् छेत्तुं संनह्यते, मधुबिन्दुना क्षाराम्बुधेः माधुर्यं रचयितुम् ईहते, यः खलान् सुधास्यन्दिभिः सूक्तैः सतां पथि नेतुं वाञ्छति।

अनुवाद—वह (मनुष्य) नयी कमल-नालों के धागों से दुष्ट हाथी को बाँधने के लिये उद्यत होता है, शिरीष के फूल के किनारे से हीरे (वज्रमणि) को बेंधने को संनद्ध होता है शहद की (एक) बूंद से खारे समुद्र को मीठा करना चाहता है, जो दुष्टों को अमृत बहाने वाले सुवचनों से सज्जनों के पथ पर ले आना चाहता है।

टिप्पणी—बाल० = बालाः मृणालाः बालमृणालाः तेषां तन्तुभिः बाल-मृणालतन्तुभिः, नये अथवा छोटे कमल नाल के तन्तुओं से। व्याल = दुष्ट हाथी। रोद्धुम = रोकने के लिये, √रुध् + तुमुन्। समुज्जृम्भते = उद्यत होता है, प्रयत्न करता है, सम् + उत् √जृम्भ + लट् लकार, प्रथम पु० एकवचन। शिरीष० = शिरीषकुसुमस्य प्रान्तेन, शिरीष पुष्प के किनारे से। वज्रमणि = वज्रमिव कठिन मणिः, वज्र के समान कठोर मणि, हीरा। छेत्तुम् = बींधने के लिये, √छिद्र + तुमुन्। संनह्यते = होता है, तैयार होता है सम् न√ह् + लट् लकार, प्रथम पु० एकवचन। मधु = मधुनाः बिन्दुना, शहद की बूंद से। क्षाराम्बुधेः = क्षार अम्बुधिः क्षाराम्बुधिः तस्य, खारी समुद्र के। माधुर्यम् = मधुरता को, मधुर + ष्यञ् + द्वितीया वि० एकवचन। रचयितुम् = बनाने के लिये, √रच् + तुमुन। ईहते = चाहता है, ईह् + लट् लकार, प्र० पु०, एक-वचन। सुधा० = सुधां स्यन्दन्ते इति सुधास्यन्दीनि, तैः, अमृत बहाने वाले। स्यन्दिभि = √स्यन्द + णिनि + तृतीया वि० बहुवचन। सूक्तैः = अच्छे वचन। द्वारा, सूक्तियों द्वारा, सु + वच् + क्त + तृतीया विभक्ति, बहुवचन। सतां = सज्जनों के। वाञ्छति—चाहता है। शार्दूलविक्रीडित छन्द।

स्वायत्तमेकान्तगुणं विधात्रा
विनिर्मितं छादनमज्ञतायाः।
विशेषतः सर्वविदां समाजे
विभूषणं मौनमपण्डितानाम् ॥७॥

अन्वय—विधात्रा अज्ञतायाः स्वायत्तम् एकान्तगुणं (मौनं) छादन विनिर्मितम्। सर्वविदा समाजे विशेषतः मौनम् अपण्डितानां भूषणम् (अस्ति)।

अनुवाद—विधाता ने मौन को मूर्खता को छिपाने वाला एक ऐसा परदा बनाया है जो मनुष्य के अपने आधीन है और जो केवल गुण रूप है। सर्वज्ञाता पण्डितों की सभा में विशेष रूप से मौन मूर्खों का भूषण है।

टिप्पणी—विधात्रा=विधाता (ब्रह्मा) के द्वारा, वि√धा+तृच्+तृतीया वि०, एकवचन। अज्ञतायाः=मूर्खता का। स्वायत्तम्=अपने, आधीन, मनुष्य को मौन धारण करने के लिये किसी दूसरे पर निर्भर रहने की आवश्यकता नहीं होती, वह जब चाहे स्वयं मौन धारण कर सकता है। एकान्तगुणम्=एक एव अन्तः गुणः यस्य तत्, गुण ही जिसका एक अन्त है अर्थात् केवल गुणरूप। छादनम्=आवरण, छिपाने वाला, परदा, √छद्+णिच्+ल्युट्+नपुंसक लिङ्ग, प्रथमा वि० एक व०। विनिर्मितम्=बनाया गया है, निर्√मा+क्त+नपुंसक लिङ्ग प्रथमा वि०, एक व०। मौनम्=मनुर्भावः मुनि+अण्+नपुंसक लिङ्ग प्रथमा वि० एकवचन। विभूषण=वि√भूष्+ल्युट्। इन्द्रवज्रा छन्द।

यदा किञ्चिज्ज्ञोऽहं द्विप इव मदान्धः समभवं
तदा सर्वज्ञोऽस्मीत्यभवदवलिप्तं मम मनः।
यदा किञ्चित्किञ्चिद् बुधजनसकाशादवगतं
तदा मूर्खोऽस्मीति ज्वर इव मदो मे व्यपगतः ॥८॥

अन्वयः—यदा अहं किञ्चिज्ज्ञः द्विपः इव मदान्धः, समभवम्, तदा सर्वज्ञ अस्मि इति मम मनः अवलिप्तम्, अभभवत् यदा बुधजन सकाशात् किञ्चित् किञ्चित् अवगतम्, तदा मूर्खः अस्मि इति ज्वरः इव मे मदः व्यपगतः।

अनुवाद—जब मैं थोड़ा सा जानता था तो (मैं) हाथी के समान मद से अन्धा हो गया था (और) उस समय मेरा मन 'मैं सर्वज्ञ हूँ' इस प्रकार

से कुछ (मैंने) जाना, 'तब मैं मूर्ख हूँ इस प्रकार (जानकर) ज्वर के समान मेरा मद उतर गया'।

टिप्पणी—किञ्चिज्ज्ञः = किञ्चिद् जानाति इति किञ्चिज्ज्ञः, थोड़ा-सा जानने वाला, अल्पज्ञ, किञ्चित्√ज्ञा + क + पुंल्लिङ्ग, प्रथमा वि० एक व०। द्विप = द्वाभ्यां (मुख-शुण्डाभ्यां) पिबति इति, जो दो (मुख और सूंड) से पीता है, हाथी, द्वि√पा + क। मदान्धः = मदेन अन्धः, मद के कारण अन्धा। सर्वज्ञ = सर्वं जानाति इति, सर्व√ज्ञा + क + प्रथमा वि०, एक व०। अवलिप्त = अभिमानी, अव = लिप् + क्त। अवगतम् = जाना। व्यपगतः = दूर हो गया, वि + अप√गम् + क्त, पुंल्लिङ्ग, प्रथमा विभक्ति, एक व०। शिखरिणी छन्द।

कृमिकुलचितं लालाक्लिन्नं विगन्धि जुगुप्सितं।
निरुपमरसं प्रीत्या खादन्नरास्थि निरामिषम्॥
सुरपतिमपि श्वा पार्श्वस्थं विलोक्य न शङ्कते।
न हि गणयति क्षुद्रो जन्तुः परिग्रहफल्गुताम् ॥९॥

अन्वयः—श्वा कृमिकुलचितं लालाक्लिन्नं विगन्धि जुगुप्सितं निरुपमरसं निरामिषं नरास्थि प्रीत्या खादन् पार्श्वस्थं सुरपतिम् अपि विलोक्य न शङ्कते। क्षुद्रो जन्तुः परिग्रहफल्गुतां न हि गणयति।

अनुवाद—कुत्ता कीड़ों के समूह से व्याप्त, लार से भीगी हुई, दुर्गन्धयुक्त घृणित, अतुलित (बुरे) रस वाली, मांस रहित, मनुष्य की हड्डी को प्रेम से (या प्रसन्नता से) खाता हुआ समीप में स्थित इन्द्र को भी देखकर शङ्कित नहीं होता। (सच है) नीच प्राणी ग्रहण की गई (वस्तु की) निस्सारता पर ध्यान नहीं देता।

टिप्पणी—कृमि० = कृमीणां कुलैः चितं कृमियों (क्षुद्र कीटों) के समूह से व्याप्त। चित = व्याप्त, √चि + √क्त। लाला० = लालाभिः क्लिन्नम्, लार से भीगी हुई। लाला = लार। क्लिन्न = भीगी हुई, √क्लिद् + क्त। विगन्धि = दुर्गन्धयुक्त, वि + गन्ध + इनि + नपुंसकलिङ्ग, द्वितीया वि०, एक व०। इसके

स्थान पर विर्गाहि पाठ भी है । विर्गाहि=निन्दित, वि+गर्ह+इनि+नपुंसक-लिङ्ग द्वितीया वि०, एक व० । जुगुप्सितम्=घृणित,√गुप्+सन्+क्त+नपुंसकलिङ्ग द्वितीया वि०, एक व० अथवा√गुप्+सन्+अ+टाप्=जुगुप्सा, जुगुप्सा+इतच—जुगुप्सित । निरुपमरसं=निर्गता उपमा यस्य सः निरुपमः, निरुपमः रसः यस्य यस्मिन् वा तत्, जिसका रस अर्थात् स्वाद तुच्छता में अनुपम हो । निरामिषम्=निर्गतम् आमिषं यस्मात् तत्, मांस-रहित । प्रीत्या=प्रसन्नता से,√प्री+क्तिन्+तृतीया वि०, एक व० । खादन्=खाता हुआ; √खाद्+शतृ+पुंल्लिङ्ग, प्रथमा वि०, एक व० । पार्श्वस्थम्=पार्श्वे तिष्ठति इति पार्श्वस्थः, तम् समीप में स्थित । सुरपतिम्=सुराणां पतिः, तम्, देवराज इन्द्र को । विलोक्य=देखकर, वि√लोक्+ल्यप् । क्षुद्रः=छोटा, नीच । जन्तुः=जीव, प्राणी । परिग्रहफल्गुताम्=परिग्रहस्य फल्गुताम् ग्रहण की हुई वस्तु की व्यर्थता अथवा निस्सारता को, फल्गुतां=निःसारता, व्यर्थता, फल्गु (निःसार)+तल्+टाप् ।
गणयति=गिनता है, समझता है । 'हरिणी' छन्द ।

शिरः शार्वं स्वर्गात् पशुपतिशिरस्तः क्षितिधरं
　　महीध्रादुत्तुङ्गादवनिमवनेश्चापि जलधिम् ।
अधोऽधो गङ्गेयं पदमुपगता स्तोकमथवा
　　विवेकभ्रष्टानां भवति विनिपातः शतमुखः ॥१०॥

अन्वयः—इयं गङ्गा स्वर्गात् शार्वं शिरः, पशुपतिशिरस्तः क्षितिधरम्, उत्तुङ्गात् महिध्रात् अवनिम्, अवनेः च अपि जलधिम् (एवं) अधः अधः स्तोकं पदम् उपगता ; अथवा विवेकभ्रष्टानां शतमुखः विनिपातः भवति ।

अनुवाद—इस गङ्गा ने स्वर्ग से शिवजी के सिर पर, सिर से (हिमालय) पर्वत पर, ऊँचे पर्वत से पृथिवी पर और पृथिवी से भी समुद्र में, इस प्रकार नीचे-नीचे छोटे स्थान को प्राप्त किया । अथवा विवेक से भ्रष्ट हुये पुरुषों का सैकड़ों प्रकार से पतन होता है ।

टिप्पणी—शार्वम्=शिवजी के; शर्व (शिव)+अण्+नपुंसकलिङ्ग

द्वितीया वि०, एक व० । पशुपति=शिव । क्षितिधरम्=(हिमालय) पर्वत पर । उत्तुङ्गात्=ऊँचे । महीध्रात्=पर्वत से । अवनि=पृथिवी । जलधि= समुद्रः, जल √धा + कि । अधोऽधः=नीचे-नीचे । स्तोकम्=छोटा, क्षुद्र । विवेक०=विवेकात् भ्रष्टानाम्, विवेक से भ्रष्ट हुए पुरुषों का । शतमुखः= शतं मुखानि यस्य सः, सौ मुख वाला अर्थात् सैंकडों बार । विनिपातः=पतन, वि + नि + √पत् + घञ् + पुंल्लिग, प्रथमा वि०, एक व० । पशुपतिशिरस्तः =क्षितिधरं के स्थान पर पतति शिरसस्तत् क्षितिधरं भी पाठ है, इसका अर्थ होगा--सिर से उस (प्रसिद्ध हिमालय) पर्वत पर गिरती है । शिखरिणी छन्द ।

शक्यो वारयितुं जलेन हुतभुक् छत्रेण सूर्यातपो
नागेन्द्रो निशिताङ्कुशेन समदो दण्डेन गोगर्दभौ ।
व्याधिर्भेषजसङ्ग्रहैश्च विविधैर्मन्त्रप्रयोगैर्विषं
सर्वस्यौषधमस्ति शास्त्रविहितं मूर्खस्य नास्त्यौषधम् ॥११॥

अन्वयः—हुतभुक् जलेन वारयितुं शक्यः, सूर्यातपः छत्रेण, समदः नागेन्द्रः निशिताङ्कुशेन, गोगर्दभौ दण्डेन, व्याधिः भेषजसंग्रहैः च विषं विविधैः मन्त्र-प्रयोगैः (वारयितुं शक्यम्) । सर्वस्य शास्त्रविहितम् औषधम् अस्ति, (किन्तु) मूर्खस्य औषधं नास्ति ।

अनुवाद—अग्नि जल से शान्त की जा सकती है, सूर्य की धूप छाते से, मत्त गजराज तेज अंकुश से, सांड और गधा डन्डे से, रोग औषधियों के संग्रहों से और विष अनेक प्रकार के मन्त्रों के प्रयोग से । सभी की शास्त्रों द्वारा बताई गई औषधि है (किन्तु) मूर्ख की (कोई) औषध नहीं है ।

टिप्पणी—हुतभुक्=हुतं भुङ्क्ते इति हुतभुक् होम किये हुए को खाने वाली अग्नि, हुतं √भुज् + क्विप् + पुंल्लिग प्रथमा वि०, एक व० । वारयितुम् =शान्त करने के लिये, हटाने के लिये, √वृ + णिच् + तुमुन् । शक्यः=समर्थः, योग्य, शक् + यत् + पुंल्लिग, प्रथमा व०, एक व० । सूर्यातप.=सूर्यस्य आतपः सूर्य की धूप । छत्र=छाता । समदः=मदेन सह वर्तमानः, मदयुक्त, मत । नागेन्द्रः=नागानाम् इन्द्रः, हाथियों का स्वामी, गजराज । निशित०=निशितेन

अङ्कुशेन, तेज अंकुश से। गोगर्दभो = गोः च गर्दभः च = सांड (या बैल) और गधा। व्याधि = रोग, वि + आ + √धा + कि + पुंल्लिग, प्रथमा वि०, एक व०। भेषज० = भेषजानां संग्रहैः, ओषधियों के संग्रह अर्थात् समूह से अथवा ओषधियों के सेवन से। मन्त्र० = मन्त्राणां प्रयोगै, मन्त्रों के प्रयोग से। शास्त्र० = शास्त्रैः विहितम्, शास्त्रों द्वारा विधान की गई। विहित = वि√धा + क्त। औषधम् = दवा ; ओषधि (जड़ी बूटी) + अण् + नपुंसकलिंग, प्रथमा वि०, एक व०। शार्दूलविक्रीडित छन्द।

साहित्यसङ्गीतकलाविहीनः
साक्षात्पशुः पुच्छविषाणहीनः।
तृणं न खादन्नपि जीवमान-
स्तद्भागधेयं परमं पशूनाम् ॥१२॥

अन्वयः—साहित्य-सङ्गीत-कला-विहीनः (नरः) साक्षात् पुच्छ-विषाण-हीनः पशु (अस्ति)। तृणं न खादन् अपि जीवमानः तत् पशूनां परमं भागधेयम् (अस्ति)।

अनुवाद—साहित्य, सङ्गीत और कला से रहित (मनुष्य) साक्षात् पूंछ और सींगों से रहित पशु है। घास न खाता हुआ भी (वह जो) जीवित है, यह पशुओं का परम सौभाग्य है।

टिप्पणी—साहित्य = साहित्य० च सङ्गीत च कला च इति साहित्यसङ्गीतकलाः, ताभिः विहीनः साहित्यसङ्गीतकलाविहीनः, साहित्य संगीत और कला से रहित। साहित्य = सहित + ष्यञ्। सङ्गीत = सम √गै + क्त। विहीन = वि √हा + क्त। पुच्छ० = पुच्छः च विषाणो च इति पुच्छविषाणाः, तैः हीनः पुच्छविषाणहीनः, पूंछ और सींगों से रहित। तृणम् = घास। खादन् = खाता हुआ, √खाद् + शतृ + पुंल्लिग, प्रथमा वि०, एक व०। जीवमानः = जीता हुआ है, √जीव् + शानच् + पुंल्लिग, प्रथमा वि, एक व०। जीव् धातु परस्मैपदी है, अतः व्याकरणानुसार इसमें शानच् प्रत्यय न लगकर शतृ प्रत्यय लगना

चाहिये । यह प्रयोग केवल 'निरङ्कुशाः कवयः' का समर्थक है । भागधेयम्= भाग्य, सौभाग्य । उपजाति छन्द ।

येषां न विद्या न तपो न दानं
ज्ञानं न शीलं न गुणो न धर्मः ।
ते मर्त्यलोके भुवि भारभूता:
मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति ॥१३॥

अन्वय:—येषां न विद्या, न तपः, न दानं, (न) ज्ञानं, न शीलं, न गुणः, न धर्मः (अस्ति) ते मर्त्यलोके भुवि भारभूताः, मनुष्यरूपेण मृगाः चरन्ति ।

अनुवाद—जिन (मनुष्यों) के (पास) न विद्या है, न तप है, न दान है, न ज्ञान है, न शील है, न गुण है, न धर्म है, वे (इस) मृत्युलोक में पृथिवी के ऊपर भारसमान हैं (और) मनुष्य के रूप में पशु घूम रहे हैं ।

टिप्पणी—दान=√दा+ल्युट् । शील=अच्छा स्वभाव, सदाचरण । मर्त्यलोके=मर्त्यानां लोके, मरणशील लोगों के लोक में । मर्त्य=मर्त (=मनुष्य) +यत् । भुवि=पृथिवी पर । भारभूता=भारः इव भूताः, भार के समान । मनुष्यरूपेण=मनुष्यस्य रूपेण, मनुष्य के रूप में । मृगाः=पशवः । चरन्ति= घूमते-फिरते हैं । उपजाति छन्द ।

वरं पर्वतदुर्गेषु भ्रान्तं वनचरैः सह ।
न मूर्खजनसम्पर्कः सुरेन्द्रभवनेष्वपि ॥१४॥

अन्वय:—वनचरैः सह पर्वतदुर्गेषु भ्रान्तं वरम् (अस्ति) । मूर्ख-जन सम्पर्कः सुरेन्द्र-भवनेष्वपि वरं न (अस्ति) ।

अनुवाद—वनचरों के साथ पर्वतों के दुर्गम (स्थलों) पर घूमना अच्छा है (किन्तु) मूर्ख लोगों का सम्पर्क इन्द्र के भवनों में भी अच्छा नहीं है ।

टिप्पणी—वनचरैः=वने चरन्ति इति वनचराः, तैः, वनों में घूमने वालों के, वनवासियों के (साथ), सह के योग में तृतीया विभक्ति का प्रयोग । पर्वत०=

पर्वतानां दुर्गेषु, पर्वतों के ऐसे स्थल जहाँ जाना कठिन है। मूर्ख० = मूर्खाणां जनानां सम्पर्कः अथवा मूर्खैः जनैः सम्पर्कः मूर्ख लोगों का सम्पर्क। सुरेन्द्र० = सुराणाम् इन्द्रः सुरेन्द्रः, तस्य भवनेषु, देवराज (इन्द्र) के भवनों में। अनुष्टुप् छन्द।

शास्त्रोपस्कृतशब्दसुन्दरगिरः शिष्यप्रदेयाऽऽगमाः
विख्याताः कवयो वसन्ति विषये यस्य प्रभोर्निर्धनाः।
तज्जाड्यं वसुधाधिपस्य कवयस्त्वर्थं विनापीश्वराः
कुत्स्याः स्युः कुपरीक्षिका हि मणयो यैरर्घतः पातिताः ॥१५॥

अन्वयः—शास्त्रोपस्कृत-शब्द-सुन्दर-गिरः शिष्यप्रदेयागमाः विख्याताः कवयः यस्य प्रभोः विषये निर्धनाः वसन्ति तत् वसुधाधिपस्य जाड्यम्। कवयः तु अर्थं विना अपि ईश्वराः। यैः मणयः अर्घतः पातिताः ते कुपरीक्षिका हि कुत्स्याः स्युः।

अनुवाद—शास्त्रों द्वारा शोधित शब्दों से सुन्दर वाणी वाले, शिष्यों को दिये जाने योग्य विद्या वाले प्रसिद्ध कवि जिसके देश में निर्धन रहते हैं, यह (उस) राजा की मूर्खता है। कवि लोग तो धन के बिना भी राजा हैं। जिन्होंने मणियों को मूल्य से गिरा दिया, वे बुरे परीक्षक (= जौहरी) ही निन्दनीय हैं (न कि मणियाँ)।

टिप्पणी—शास्त्र० = शास्त्रैः उपस्कृतैः शब्दैः सुन्दर्यः गिरः येषां ते, शास्त्रों द्वारा शोधित शब्दों से जिनकी वाणी सुन्दर है। उपस्कृत = संस्कृत, शोधित। गिरः = वाणियाँ। शिष्य० = शिष्येभ्यः प्रदेयाः आगमाः येषां ते, जिनके पास शिष्यों को देने के योग्य विद्या है। प्रदेया = देने योग्य, प्र √दा + यत्। आगम = विद्या, शास्त्र। प्रभोः = प्रभु के, राजा के। विषये = देश में। वसुधा = वसुधाया अधिपः वसुधाधिपः, तस्य, राजा की। जाड्यम् = जड़ता, मूर्खता; जड + ष्यञ् + नपुंसकलिंग, प्रथमा वि०, एक व०। अर्थम् = धन, विना के साथ द्वितीया विभक्ति का प्रयोग। ईश्वराः = स्वामी, राजा, समर्थ। अर्घतः = मूल्य से; अर्घ + तसिल्। पातिताः = गिरा दी गई हैं। √पत् + णिच् + क्त =

पातित: पातित + टाप् पातिता, प्रथमा विभक्ति बहुवचन में पातिता:। कुपरीक्षिका = खराब परीक्षक अर्थात् जौहरी। कुत्स्या = निन्दा योग्य, √कुत्स् + पुल्लिग, प्रथमा विभक्ति, बहुवचन। स्यु: = हों या हैं (लट् के अर्थ में विधिलिङ् का प्रयोग)। शार्दूलविक्रीडित छन्द।

हर्तुर्याति न गोचरं किमपि शं पुष्णाति यत्सर्वदा-
ऽप्यर्थिभ्य: प्रतिपाद्यमानमनिशं प्राप्नोति वृद्धिं पराम्।
कल्पान्तेष्वपि न प्रयाति निधनं विद्याख्यमन्तर्धनं
येषां तान्प्रति मानमुज्झत नृपा: कस्तै: सह स्पर्धते॥१६॥

अन्वय:—येषां विद्याख्यम् अन्तर्धनम्, यत् हर्तु: गोचरं न याति, सर्वदा किमपि शं पुष्णाति, अर्थिभ्य: प्रतिपाद्यमानम् अनिशं हि परां वृद्धिं प्राप्नोति, कल्पान्तेषु अपि निधनं न प्रयाति, (हे) नृपा:, तान् प्रति मानम् उज्झत, तै: सह क: स्पर्धते।

अनुवाद—जिन लोगों के पास विद्या नाम का गुप्त धन है जो (विद्या-धन) चोर (की दृष्टि) का विषय नहीं बनता, सर्वदा किसी (अलौकिक) कल्याण को पुष्ट करता है, याचकों को दिया जाता हुआ निरन्तर परं वृद्धि को प्राप्त होता है, (हे) राजाओं, उन विद्वान् (लोगों) के प्रति अभिमान का त्याग कर दो; उनके साथ कौन स्पर्धा कर सकता है?

टिप्पणी—विद्याख्यम् = विद्या आख्या (नाम) यस्यतत्, विद्या नाम वाला। अन्तर्धनम् = आन्तरिक धन, गुप्त धन। हर्तु: = हरण करने वाले अर्थात् चोर के, √हृ + तृच् + पुंल्लिग, षष्ठी विभक्ति, एकवचन। गोचरम् = गाव: (इन्द्रियाणि) चरन्ति अस्मिन् इति गोचर: (विषय:), तम् = विषय। किमपि = किसी (अलौकिक या अनिर्वचनीय)। शम् = कल्याण, कुशलता, प्रसन्नता, समृद्धि, स्वस्थता, अव्यय। पुष्णाति = पुष्ट करता है, बढ़ाता है। अर्थिभ्य = याचकों को, अर्थ + इनि + पुंल्लिग, चतुर्थी विभक्ति, बहुवचन। प्रतिपाद्यमानम् =

दिया जाता हुआ, प्रति√पद्+शानच्+नपुंसक लिङ्ग, प्रथमा वि०, एक व०। अनिशम्=निरन्तर। पराम्=अत्यन्त, अधिक। कल्पान्तेषु=कल्पानाम् अन्तेषु, कल्पों के अन्त में, ब्रह्मा के एक दिन को, जो १००० युगों के और मनुष्यों के ४३२०००००० वर्षों के बराबर होता है कल्प कहते हैं। निधनम्=नाश को। प्रयाति=प्राप्त होता है। मानम्=अभिमान को। उज्झत=त्याग दो, √उज्झ्+लोट् लकार, मध्यम पुरुष, बहुवचन। स्पर्धते=स्पर्धा अर्थात् बराबर करने की इच्छा करता है। तान् प्रति में प्रति के योग में द्वितीया विभक्ति। तैः सह में सह के योग में तृतीया विभक्ति। शार्दूलाविक्रीडित छन्द।

अधिगतपरमार्थान् पण्डितान् माऽवमंस्थाः
तृणमिव लघु लक्ष्मीर्नैव तान् संरुणद्धि।
अभिनवमदलेखाश्यामगण्डस्थलानां
न भवति बिसतन्तुर्वारणं वारणानाम् ॥१७॥

अन्वयः—अधिगत् परमार्थान् पण्डितान् मा अवमंस्थाः, तृणम् इव लघु लक्ष्मीः तान् नैव संरुणद्धि। बिसतन्तुः अभिनव-मदलेखाश्याम-गण्डस्थलानां वारणानां वारणं न भवति।

अनुवाद—परम तत्त्व को प्राप्त किये हुए (परमज्ञानी) पण्डितों का अपमान मत करो, तिनके के समान तुच्छ लक्ष्मी उनको नहीं रोक सकती। मृणाल तन्तु ताजी मद-रेखा से श्याम हुये कपोल वाले हाथियों का रोधक नहीं होता।

टिप्पणी—अधिगत०=अधिगतः परमार्थः यैः तान्, जिन्होंने परम तत्त्व को (अर्थात् परम ज्ञान को) पा लिया है उन (विद्वानों) को। मा अवमंस्थाः=अपमान मत करो। अवमंस्थाः=अव√मत्+लुङ् ल०, मध्यम पु०, एक० व०, मा के योग में 'अ' रहित प्रयोग। तृणम्=तिनका, घास। लघु=तुच्छ। संरुणद्धि=रोकती है, सम्√रुध्+लट् लकार, प्रथम पु०, एक व०। बिसतन्तु।

=बिसानां तन्तुः; कमल नाल का तन्तु । अभिनव० = अभिनवाभिः मदलेखाभिः श्यामानि गण्डस्थलानि येषां तान्, तानी मद-रेखा से श्याम गण्डस्थल (=कपोल) वाले (हाथियों) का । वारणानाम् = हाथियों का । वारणम् = रोधक, रोकने वाला, √वृ + णिच् + ल्युट् + नपुंसकलिङ्ग, प्रथमा विभक्ति, एकवचन । मालिनी छन्द ।

अम्भोजिनीवननिवासविलासमेव
हंसस्य हन्ति नितरां कुपितो विधाता ।
न त्वस्य दुग्धजलभेदविधौ प्रसिद्धां
वैदग्ध्यकीर्त्तिमपहर्तुमसौ समर्थः ॥१८॥

अन्वयः—नितरां कुपितो विधाता हंसस्य अम्भोजिनीवननिवासविलासम् एव हन्ति । असौ तु अस्य दुग्ध-जल-भेद-विधौ प्रसिद्धां वैदग्ध्यकीर्तिम् अपहर्तुं न समर्थः ।

अनुवाद—अत्यधिक क्रुद्ध हुआ ब्रह्मा हंस के कमलिनियों के वन में निवास के आनन्द को ही नष्ट करता है, किन्तु वह (ब्रह्मा) इसके दूध और जल को अलग करने की विधि के सम्बन्ध में प्रसिद्ध निपुणता के यश का अपहरण करने में समर्थ नहीं है ।

टिप्पणी—नितराम् = अत्यधिक । विधाता = ब्रह्मा, वि √धा + तृच् + पुंल्लिग, प्रथमा वि०, एकवचन । अम्भोजिनी० = अम्भोजिनीनां वने निवासस्य विलासम् अथवा अम्भोजिनीनां वने निवास एव विलासः, तम्, कमलिनियों के वन में निवास के आनन्द को । अम्भोजिनी = कमलिनी, कमल का पौधा; अम्भस् √जन् + ड = अम्भोज; अम्भोज + इनि = अम्भोजिन् स्त्रीलिङ्ग में ङीप्, अम्भोजिनी । विलास = आनन्द; वि √लस् + घञ् । दुग्ध० = दुग्धं च जलं च दुग्धजले, तयोः भेदस्य विधौ, दूध और जल के भेद अर्थात् अलग-अलग करने की विधि में । दुग्ध = √दुह् + क्त । भेद = भिद् + घञ् । विधि = वि √धा + कि । वैदग्ध्य० = वैदग्ध्यस्य कीर्तिम्, निपुणता की कीर्ति को । वैदग्ध्य =

निपुणता, पाण्डित्य; विदग्ध + ष्यञ्। कीर्ति = √कृत् + इन्। अपहर्तुम् = अपहरण करने में; अप√हृ + तुमुन्।

कवि का भाव यह है कि जिस प्रकार ब्रह्मा कुपित होकर हंस का केवल कमल-सरोवर-विहार का आनन्द नष्ट कर सकता है, उसके गुण—दूध और जल को अलग करने में उसकी प्रसिद्ध कीर्ति-को नष्ट नहीं कर सकता है, उसी प्रकार यदि कोई राजा किसी विद्वान् से कुपित हो जाये तो उसके केवल बाह्य सुख और वैभव को ही नष्ट कर सकता है, उसके गुण—उसके पाण्डित्य और उसकी कीर्ति को नष्ट नहीं कर सकता। वसन्ततिलका छन्द।

केयूरा न विभूषयन्ति पुरुषं हारा न चन्द्रोज्ज्वला
न स्नानं न विलेपनं न कुसुमं नालङ्कृता मूर्धजाः।
वाण्येका समलङ्करोति पुरुषं या संस्कृता धार्यते
क्षीयन्ते खलु भूषणानि सततं वाग्भूषणं भूषणम्॥१९॥

अन्वयः—पुरुषं न केयूराः विभूषयन्ति, न चन्द्रोज्ज्वलाः हाराः, न स्नानं, न विलेपनं, न कुसुमं न अलङ्कृताः मूर्धजाः। एका वाणी, या संस्कृता धार्यते, पुरुषं समलङ्करोति। भूषणानि खलु क्षीयन्ते, वाग्भूषणम् सततं भूषणम् (अस्ति)।

अनुवाद—पुरुष को न बाजूबन्द सुशोभित करते हैं, न चन्द्रमा के समान उज्ज्वल हार, न स्नान, (चन्दन आदि का) लेप न पुष्प (और) न सजाये हुए केश। केवल एक वाणी, जो शुद्ध रूप से धारण की जाती है, पुरुष को सुशोभित करती है। (और सब) भूषण (गहने) निश्चित रूप से नष्ट हो जाते हैं, वाणी रूपी भूषण ही निरन्तर रहने वाला भूषण है।

टिप्पणी—केयूरा = बाजूबन्द। चन्द्रोज्ज्वला = चन्द्रः इव उज्ज्वला चन्द्रमा के समान उज्ज्वल। विलेपनम् = चन्दन आदि लेप, वि√लिप् + ल्युट् + नपुंसकलिंग प्रथमा वि०, एकवचन। अलङ्कृता = सजाये गये। मूर्धजाः = केश; मूर्धन√जन् + ड + पुंल्लिग, प्रथमा वि०, बहुवचन। संस्कृता = शुद्ध की हुई; सम् + कृ + क्त + टाप्। क्षीयन्ते = नष्ट हो जाते हैं। वाग्भूषणम् = वाग्

भूषणम्, वाणी रूपी भूषण। सततं = निरन्तर। भूषणम् √भूष् + ल्युट् + नपुंसकलिंग, प्रथमा विभक्ति, एकवचन। शार्दूलविक्रीडित छन्द।

विद्या नाम नरस्य रूपमधिकं प्रच्छन्नगुप्तं धनं
विद्या भोगकरी यशःसुखकरी विद्या गुरूणां गुरुः।
विद्या बन्धुजनो विदेशगमने विद्या परं दैवतं
विद्या राजसु पूजिता न हि धनं विद्याविहीनः पशुः ॥२०॥

अन्वयः—विद्यानाम नरस्य अधिकं रूपं, प्रच्छन्नगुप्तं धनम्। विद्या भोगकरी यशःसुखकरी, विद्या गुरुणां गुरुः। विदेश-गमने विद्या बन्धुजनः। विद्या परं दैवतम्। विद्या राजसु पूजिता, न हि धनम्। विद्याविहीनः पशुः।

अनुवाद—विद्या मनुष्य का अधिक रूप है, ढका हुआ गुप्त (= छिपा हुआ या सुरक्षित) धन है। विद्या भोगों को देने वाली और यश तथा सुख को उत्पन्न करने वाली है। विद्या गुरु की गुरु है। विदेश जाने में विद्या आत्मीय जन (के समान) है। विद्या परम देवता है। विद्या राजाओं में पूजित है, न कि धन। विद्या से रहित (मनुष्य) पशु है।

टिप्पणी—नाम = प्रकाश्यवाचक अव्यय। अधिकं रूपम् = अधिक रूप है अर्थात् विद्या द्वारा मनुष्य के व्यक्तित्व में कुछ विशेषता आ जाती है। प्रच्छन्न० = प्रच्छन्नं गुप्तं च, ढका हुआ और गुप्त। प्रच्छन्नं = ढका हुआ (क्योंकि विद्या प्रत्यक्ष रूप से दृष्टिगोचर नहीं होती है), प्र √छद् + क्त। गुप्त = छिपा हुआ या सुरक्षित; √गुप् + क्त। भोगकरी = भोगं करोति इति भोगकरी, भोगों को करने वाली अर्थात् देने वाली; भोग √कृ + अप् = भोगकर, स्त्रीलिंग में ङीप् भोगकरी। यश० = यशः सुख च करोति इति यशःसुखकारी, यश और सुख उत्पन्न करने वाली। गुरूणां गुरुः = गुरुओं का भी (अथवा गुरुओं में भी) गुरु है, अर्थात् पूजनीय में भी पूजनीय है। बन्धुजनः = आत्मीय जन। परं दैवतम् = श्रेष्ठ देवता। इसके स्थान पर पाठ परा देवता भी है। इसका अर्थ भी वही होगा। राजसु = राजाओं में। विद्याविहीनः = विद्यया विहीनः, विद्या से रहित। विहीन = वि √हा + क्त। शार्दूलविक्रीडित छन्द।

क्षान्तिश्चेत् कवचेन किं किमरिभिः क्रोधोऽस्ति चेद् देहिनाम्,

ज्ञातिश्चेदनलेन किं यदि सुहृद् दिव्यौषधैः किं फलम्।

किं सर्पैर्यदि दुर्जनाः किमु धनैर्विद्याऽनवद्या यदि,

व्रीडा चेत्किमु भूषणैः सुकविता यद्यस्ति राज्येन किम् ॥२१॥

अन्वयः—देहिनां क्षान्तिः चेत् कवचेन किम्, क्रोधः अस्ति चेत् अरिभिः किम्, ज्ञातिः चेद् अनलेन किम्, यदि सुहृद् दिव्यौषधैः किं फलम्, यदि दुर्जना सर्पैः किम्, यदि अनवद्या विद्या धनैः किमु, व्रीडा चेत् भूषणैः किमु, यदि सुकविता अस्ति राज्येन किम्।

अनुवाद—देहधारियों के पास यदि क्षमा है तो कवच से क्या (फल) है (क्योंकि क्षमा द्वारा ही दुष्ट से रक्षा हो सकती है), यदि क्रोध है तो शत्रुओं से क्या (फल) है (क्योंकि क्रोध ही उनका नाश कर सकता है), यदि जाति-भाई है तो अग्नि से क्या (फल) है (क्योंकि जाति-भाई ही उसे जलाने को अर्थात् दुःख देने को या ईर्ष्या के कारण जलाने को पर्याप्त है), यदि मित्र है तो दिव्य औषधियों से क्या (फल) है (क्योंकि मित्र ही सब रोगों को दूर भगा सकता है), यदि दुर्जन है तो सर्पों से क्या (फल) है (क्योंकि दुर्जन ही डसने को अर्थात् पीड़ित करने को पर्याप्त है), यदि प्रशंसनीय विद्या है तो धन से क्या लाभ है (क्योंकि विद्या द्वारा ही सुख प्राप्त हो सकता है), यदि लज्जा है तो आभूषणों से क्या (लाभ) है (क्योंकि लज्जा ही आभूषण का कार्य करती है) और यदि सुकविता है तो राज्य से क्या (लाभ) है (क्योंकि काव्य-साम्राज्य जन-साम्राज्य से भी बढ़कर है)।

टिप्पणी—देहिनां = देहधारियों की अर्थात् मनुष्यों के पास; देह + इनि, पुल्लिग, षष्ठी वि०, बहुवचन। क्षान्तिः = क्षमा: √क्षम् + क्तिन् + प्रथमा वि०; एकवचन। किम् = क्या (फल, लाभ, प्रयोजन)। ज्ञातिः = जाति-भाई, सम्बन्धी व्यक्तिः √ज्ञा = क्तिन् + प्रथमा वि०, एकवचन। अनलेन = अग्नि से। सुहृद् = मित्र, सु + √हृद् + क्विप्। दिव्योषधैः = दिव्य अर्थात् श्रेष्ठ औषधों से। अनवद्या = न अवद्या, जो निन्दनीय न हो अर्थात् प्रशंसनीय। किमु = किम् + उ 'किम्' प्रश्नवाचक है और 'उ' विस्मयवाचक अव्यय है। व्रीडा = लज्जा। शार्दूल-विक्रीडित छन्द।

दाक्षिण्यं स्वजने दया परजने शाठ्यं सदा दुर्जने
प्रीतिः साधुजने नयो नृपजने विद्वज्जनेष्वार्जवम् ।
शौर्यं शत्रुजने क्षमा गुरुजने नारीजने धूर्तता
ये चैवं पुरुषाः कलासु कुशलास्तेष्वेव लोकस्थितिः ॥२२॥

अन्वयः—स्वजने दाक्षिण्यं, परजने दया, दुर्जने सदा शाठ्यम्, साधुजने प्रीतिः, नृपजने नयः, विद्वज्जनेषु आर्जवम्, शत्रुजने शौर्यम्, गुरुजने क्षमा, नारीजने धूर्तता, एवं च ये पुरुषाः कलासुः कुशलाः तेषु एव लोकस्थितिः ।

अनुवाद—अपने लोगों पर उदारता, पराये लोगों पर दया, दुर्जनों के प्रति शठता, सज्जनों के प्रति प्रेम, राजाओं के प्रति नीति, विद्वानों के प्रति सरलता, शत्रुजनों के प्रति शूरता, गुरुजनों के प्रति क्षमा, स्त्रियों के प्रति धूर्तता—इस प्रकार जो पुरुष कलाओं में कुशल हैं उन्हीं पर लोकों की स्थिति है ।

टिप्पणी—स्वजने = अपने लोगों पर, सम्बन्धी लोगों पर । दाक्षिण्यम् = उदारता, दक्षिण + ष्यन् + नपुंसकलिङ्ग, प्रथमा वि०, एकवचन । शाठ्यम् = शठता, दुष्टता, शठ + ष्यञ् + नपुंसकलिंग, प्रथमा विभक्तिः, एकवचन । साधुजने = सज्जनों के प्रति । प्रीति = प्रेम √प्री + क्तिन्, प्रथमा विभक्ति, एकवचन । नयः = नीति √नी + अच् + पुंल्लिग, प्रथमा वि०, एकवचन । आर्जवम् = सरलता ऋजु + अण् + नपुंसकलिङ्ग, प्रथमा वि०, एकवचन । शौर्यम् = शूरता, वीरता, शूरः + ष्यञ् + नपुंसकलिङ्ग, प्रथमा वि०, एकवचन । धूर्तता = चालाकी मक्कारी, धूर्त + तल् + टाप् । लोक-स्थिति = लोकानां स्थितिः, लोकों की स्थिति, संसार का आश्रय या लोगों की मर्यादा । स्थिति = आश्रय या मर्यादा, √स्था + क्तिन् + स्त्रीलिङ्ग, प्रथमा वि०, एकवचन । शार्दूलविक्रीडित छन्द ।

जाड्यं धियो हरति सिञ्चति वाचि सत्यं
मानोन्नतिं दिशति पापमपाकरोति ।
चेतः प्रसादयति दिक्षु तनोति कीर्ति
सत्सङ्गतिः कथय किं न करोति पुंसाम् ॥२३॥

अन्वयः—(सत्सङ्गति) धियः जाड्यं हरति, वाचि सत्यं सिञ्चति, मानोन्नतिं दिशति, पापम् अपाकरोति, चेतः प्रसादयति, दिक्षु कीर्ति तनोति, कथय सत्सङ्गतिः पुंसां किं न करोति।

अनुवाद--(सत्संगति) बुद्धि की जड़ता को हरती है, वाणी में सत्य को सींचती है, सम्मान को बढ़ाती है, पाप को दूर करती है, चित्त को प्रसन्न करती है। दिशाओं में कीर्ति फैलाती है, कहो सत्सङ्गति मनुष्य के लिये क्या नहीं करती।

टिप्पणी—धियः=बुद्धि की, धी+शष्ठी वि०, एकवचन। जाड्यम्=जड़ता को; मूर्खता या मन्दता को। वाचि=वाणि में। सिञ्चति=सींचती है अर्थात् (वाणी को सत्य से) युक्त करती है। मानोन्नतिम्=मानस्य उन्नतिम्, सम्मान को, उन्नति को। मान=मन्+घञ्। उन्नति=उत्√नम्+क्तिन्। दिशति=देती है। दिश+लट् लकार, प्रथमपुरुष, एकवचन। अपाकरोति=दूर करती है। चेतः=चित्त को, चेतस्—द्वितीय वि०, एकवचन। प्रसादयति=प्रसन्न करती है। दिक्षु=दिशाओं में। तनोति=फैलाती है, √तन्+लट् लकार, प्रथम पु०, एकवचन। सत्सङ्गतिः=सज्जनानां सङ्गतिः, सज्जनों की सङ्गति, सत्+सम्+√गम्+क्तिन्+प्रथमा वि०, एकवचन। पुंसाम्=मनुष्यों का अर्थात् मनुष्यों के लिये। किं न करोति=क्या नहीं करती? अर्थात् सब कुछ करती है। वसन्ततिलका छन्द।

परमात्मा श्रेष्ठ

जयति ते सुकृतिनो रससिद्धाः कवीश्वराः।
नास्ति येषां यशःकाये जरामरणजं भयम् ॥२४॥

अन्वयः—ते सुकृतिनः रस-सिद्धाः कवीश्वराः जयन्ति येषां यशःकाये जरा मरणजं भयम् नास्ति।

अनुवाद--वे पुण्यात्मा रस-सिद्ध कवि श्रेष्ठ विजयी होते हैं जिनके यश रूपी शरीर में बुढ़ापे और मृत्यु से उत्पन्न भय नहीं है।

टिप्पणी—सुकृतिनः=पुण्यात्मा धन्य, भाग्यशाली; सुकृत+इनि+पुंल्लिग, प्रथमा वि०, बहुवचन। रससिद्धाः=रसेषु सिद्धाः, रसों में सिद्ध अर्थात् रसों से युक्त काव्यों की रचना करने में कुशल (कवि) अथवा विभिन्न

पारद आदि रसों को बनाने में कुशल (वैद्य)। कवीश्वराः = कवीनाम् ईश्वराः कवियों (काव्य रचना करने वाले अथवा वैद्यों) में श्रेष्ठ। जयति = विजयी होते हैं। यश काये = यशः एव कायः तस्मिन्। जरामरणजम् = जरा च मरणं च जरामरणे, ताभ्यां जायते इति जरामरणजम्, जरा और मरण से उत्पन्न, जरामरण + √जन् + ड + नपुंसकलिंग, प्रथमा वि०, एकवचन। भयम् = √भी + अच् = नपुंसकलिंग, प्रथमा विभक्ति, एकवचन।

इस श्लोक में विशेषणों की योजना कुछ इस प्रकार है कि कवि के पक्ष में मुख्य अर्थ निकलता है किन्तु वैद्य के पक्ष में भी दूसरा अर्थ व्यञ्जित होता है। रससिद्ध और कवीश्वर इसी प्रकार के विशेषण है। वैद्य-पक्ष में ध्वनित अर्थ इस प्रकार होगा—पुण्यात्मा रसों की रचना में कुशल वैद्य-राज विजयी होते हैं जिनके शरीर में बुढ़ापे से और मृत्यु से उत्पन्न भय नहीं है। इसमें समासोक्ति अलङ्कार है। अनुष्टुप् छन्द।

सूनुः सच्चरितः सती प्रियतमा स्वामी प्रसादोन्मुखः
स्निग्धं मित्रमवञ्चकः परिजनो निष्क्लेशलेशं मनः।
आकारो रुचिरः स्थिरश्च विभवो विद्यावदातं मुखं
तुष्टे विष्टपहारिणीष्टदहरौ संप्राप्यते देहिना॥२५॥

अन्वयः—विष्टप-हारिणि-इष्टद-हरौ तुष्टे (सति) देहिना सच्चरितः सूनुः सती प्रियतमा, प्रसादोन्मुखः स्वामी, स्निग्धं मित्रम् आवञ्चकः परिजनः; निष्क्लेश-लेशं मनः, रुचिरः आकारः, स्थिरः विभवः, विद्यावदात्तं च मुखं सम्प्राप्यते।

अनुवाद—संसार को प्रसन्न करने वाले और इच्छित वस्तु को देने वाले भगवान् विष्णु के सन्तुष्ट हो जाने पर देहधारी (मनुष्य) के द्वारा अच्छे आचरण वाला पुत्र, सती प्रियतमा (अर्थात् पत्नी), अनुग्रहणशील स्वामी, स्नेह-युक्त मित्र, छलरहित बन्धुजन, क्लेश के अंश से भी रहित (अर्थात् सर्वथा क्लेश-रहित) मन, सुन्दर आकृति, स्थिर वैभव और विद्या से उज्जवल मुख प्राप्त किया जाता है।

टिप्पणी—विष्टप० = विष्टपं (संसारं) हरति (रञ्जयति) इति विष्टपहारी, तस्मिन् संसार को प्रसन्न करने वाले (विष्णु) के। इष्टद० = इष्टं ददाति इति इष्टदः, इष्टदः हरिः इष्टदहरिः, तस्मिन् इष्टदहरौ, इच्छित वस्तु को देने वाले भगवान् विष्णु के (प्रसन्न हो जाने पर) इष्टद = इष्ट + दा + क। तुष्टे = सन्तुष्ट हो जाने पर √तुष् + क्त सप्तमी वि०, एकवचन। देहिना = शरीरधारी (मनुष्य) के द्वारा; देह + इनि + तृतीया विभक्ति, एकवचन। सच्चरितः = अच्छे आचरण वाला, सदाचारी। सूनुः = पुत्र। प्रियतमा पत्नी, प्रिय + तमप् + टाप् + प्रथमा विभक्ति, एकवचन। प्रसादोन्मुखः = प्रसादाय उन्मुखः, कृपा या अनुग्रह के लिये उन्मुख, सदैव अनुग्रह के लिये तैयार रहने वाला, अनुग्रहशील। स्निग्धम् = स्नेह युक्त, √स्निह् + क्त + नपुंसकलिंग, प्रथमा विभक्ति, एकवचन। मित्रम् = दोस्त। अवञ्चकः = न वञ्चकः धोखा न देने वाला, छलरहित। वञ्चक = वञ्च् √णिच् + ण्वुल्। परिजनः = सम्बन्धी जन या सेवक जन। निष्क्लेश-लेशम् = क्लेशस्य लेशः इति क्लेशलेशः निर्गतः क्लेशलेश यस्मात् तत् निष्क्लेश लेशम्, क्लेश के अंश या कण (लेश) से रहित, अर्थात् सर्वथा क्लेश-रहित। रुचिरः = सुन्दर, √रुच् + किरच् + पुंल्लिग, प्रथमा वि, एक व०,। आकारः = आकृतिः। विभव = वैभव, ऐश्वर्य। विद्यावदातम् = विद्यया अवदातम्, विद्या से उज्ज्वल। अवदात = स्वच्छ, उज्ज्वलः, अव √दै + क्त। शार्दूलविक्रीडित छन्द।

प्राणाघातान्निवृत्तिः परधनहरणे संयमः सत्यवाक्यं
काले शक्त्या प्रदानं युवतिजनकथामूकभावः परेषाम्
तृष्णास्रोतोविभङ्गो गुरुषु च विनयः सर्वभूतानुकम्पा
सामान्यः सर्वशास्त्रेष्वनुपहतविधिः श्रेयसामेष पन्थाः ॥२६॥

अन्वयः—प्राणाघात् निवृत्तिः, परधनहरणे संयमः, सत्यवाक्यम् काले शक्त्या प्रदानम्, परेषां युवति-जन-कथा मूकभावः, तृष्णा स्रोतो विभङ्गः, गुरुषु च विनयः, सर्वभूतानुकम्पा च श्रेयसाम् एष सर्व-शास्त्रेषु अनुपहत-विधिः सामान्यः पन्थाः।

अनुवाद—जीव-हिंसा से विमुख होना, दूसरे के धन को हरने में (अपने ऊपर) नियन्त्रण रखना, सत्यवचन, अवसर पर (शक्ति के अनुसार दान

करना), दूसरे की स्त्रियों की चर्चा में चुप रहना, लालसा के प्रवाह का नाश; बड़े लोगों के प्रति नम्रता और सब प्राणियों पर दया, यह कल्याणों का सब शास्त्रों में अखण्डित विधान वाला मार्ग है।

टिप्पणी—प्राणाघातात्=प्राणानाम् आघातात्, प्राणों के आघात से; जीव-हिंसा से। आघात्=आ√हन्+णिच्+घञ्। निवृत्तिः=विमुखता अलग रहना, नि√वृत्+क्तिन्+प्रथमा वि०, एकवचन। परधन०=परधनस्य हरणे, दूसरों के धन के अपहरण में। काले=(उचित) अवसर पर। शक्त्या= शक्ति के अनुसार। प्रदानम्=दान देना, प्र√दा=ल्युट+नपुंसकलिङ्ग, प्रथमा विभक्ति, एकवचन। परेषाम्=दूसरों की। युवति०=युवतिजनानां कथासु मूकभावः, युवतियों की चर्चा में मूकभाव अर्थात् चुप रहना। तृष्णा०=तृष्णायाः स्रोतसः विभङ्गः, लालसा की धारा का नाश, लालच की परम्परा का नाश। विभङ्ग=नाश, वि+भञ्ज्+घञ्। विनयः=नम्रता, वि√नी+अच्, पुंल्लिङ्ग, प्रथमा विभक्ति, एकवचन। सर्व०=सर्वेषु भूतेषु अनुकम्पा, सब प्राणियों के प्रति दया। श्रेयसाम्=कल्याणों का, प्रशस्य (श्र आदेश)+ईयसुन्+षष्ठी विभक्ति, एकवचन। अनुपहत०=न उपहतः विधिः यस्य सः, जिनके विधान का खण्डन नहीं किया गया—यह मार्ग जिन बातों का विधान करता है उसका किसी भी शास्त्र में खण्डन नहीं किया गया है। विधि=विधान, यह कहना कि ऐसा हो, वि√धा+कि+पुंल्लिङ्ग, प्रथमा विभक्ति, एकवचन। सामान्यः =समान, साधारण, समान+ष्यञ्+पुंल्लिङ्ग, प्रथमा विभक्ति, एकवचन। पन्थाः=मार्ग। स्रग्धरा छन्द।

प्रारभ्यते न खलु विघ्नभयेन नीचैः
प्रारभ्य विघ्नविहिता विरमन्ति मध्याः।
विघ्नैः पुनः पुनरपि प्रतिहन्यमानाः
प्रारभ्य चोत्तमजना न परित्यजन्ति ॥२७॥

अन्वयः—नीचैः खलु विघ्नभयेन (कार्यं) न प्रारभ्यते, मध्याः विघ्न-

विहिताः विरमन्ति, उत्तमजनाः च प्रारभ्य विघ्नैः पुनः पुनः प्रतिहन्यमाना अपि न त्यजन्ति ।

अनुवाद—नीच लोग विघ्नों के भय से (कार्य) प्रारम्भ नहीं करते हैं। मध्यम स्वभाव वाले लोग प्रारम्भ करके विघ्नों द्वारा मारे जाकर रुक जाते हैं और उत्तम लोग प्रारम्भ करके विघ्नों द्वारा बार-बार पीड़ित किये जाते हुये भी कार्य को नहीं त्यागते हैं।

टिप्पणी—नीचैः=नीच लोगों के द्वारा। विघ्न०=विघ्नानां भयेन; विघ्नों के भय से। मध्याः=मध्यम प्रकृति के लोग। प्रारभ्य=प्रारम्भ करके; प्र+आ√रभ्+ल्यप्। विघ्नविहिताः=विघ्नैः विहिताः, विघ्नों द्वारा मारे गये अर्थात् पीड़ित। विघ्न=वि+हन्+क्त। विहत=वि+हन्+क्त। विरमन्ति=रुक जाते हैं। प्रतिहन्यमानाः=मारे जाते हुए, पीड़ित होते हुये; प्रति√हन्+शानच्+पुंलिङ्ग, प्रथमा विभक्ति, बहुवचन। परित्यजन्ति=त्यागते हैं। प्रारभ्य चोत्तमजना की जगह प्रारब्धम् उत्तमजना भी पाठ है। इसके अनुसार अर्थ होगा—प्रारम्भ किये हुए को उत्तम जन (त्यागते नहीं हैं)। प्रारब्धम्=प्र+आ+√रभ्+क्त+नपुंसकलिङ्ग, द्वितीया विभक्ति, एकवचन। वसन्ततिलका छन्द।

प्रिया न्याय्या वृत्तिर्मलिनमसुभङ्गेऽप्यसुकरम्
असन्तो नाभ्यर्थ्याः सुहृदपि न याच्यः कृशधनः।
विपद्युच्चैः स्थेयं पदमनुविधेयं च महतां
सतां केनोद्दिष्टं विषममसिधाराव्रतमिदम् ॥२८॥

अन्वयः—प्रिया न्याय्या वृत्तिः, असुभङ्गे अपि मलिनम् असुकरम्, असन्तः तु न अभ्यर्थ्याः, कृशधनः सुहृद् अपि न याच्यः, विपदि उच्चैः स्थेयम्, महतां च पदम् अनुविधेयम्—इदं विषमम् असिधाराव्रतम् सतां केन उद्दिष्टम्।

अनुवाद—प्रिय (और) न्याय-युक्त व्यवहार, प्राणों का नाश होने पर भी बुरा (काम) आसानी से न करना, असज्जनों से न माँगना, निर्धन मित्र से भी याचना न करना, विपत्ति में उन्नत होकर (अर्थात् धैर्य के साथ) रहना, महान्

लोगों के चरण-चिह्नों का अनुसरण करना, यह कठोर तलवार की धार (पर चलने) के समान व्रत सज्जनों को किसने बतलाया ?

टिप्पणी—प्रिया = प्रिय, (दूसरों को) अच्छा लगने वाली। न्याय्या = न्यायपूर्ण, उचित; न्याय + यत् + टाप् + प्रथमा विभक्ति, एकवचन। वृत्तिः = व्यापार, व्यवहार; √वृत् + क्तिन्, प्रथमा विभक्ति, एकवचन। असु० = असूनां भङ्गे, प्राणों के नाश होने पर। मलिनम् = बुरा काम। असुकरम् = न सुकरम्; जो आसान न हो, दुष्कर। असन्तः = असज्जन लोग। अभ्यर्थ्याः = जिनसे प्रार्थना, याचना की जाय; अभि + अर्थ + यत् + प्रथमा वि०, बहुव०। कृशधनः = कृशं धनं यस्य सः, कम धन वाला, निर्धन। सुहृत् = मित्र। याच्यः = याचना की जाय। विपदि = विपत्ति में। उच्चैः = ऊँचे ढंग से, उन्नत होकर अर्थात् धैर्य के साथ। स्थेयम् = स्थिर रहना, स्था + यत् + नपुंसकलिङ्ग; प्रथमा विभक्ति, एकवचन। महताम् = महान् लोगों का। पदम् = चरण अर्थात् चरण-चिह्न। अनुविधेयम् = अनुसरण करना, अनु + वि√धा + यत् + नपुंसक-लिङ्ग, प्रथमा वि०, एकवचन। विषमम् = कठोर। असिधाराव्रतम् = असिधारा इव कठिनं व्रतम्, तलवार की धार (पर चलने) के समान कठोर व्रत। सताम् = सज्जनों को, सत् + षष्ठी वि०, बहुवचन। उद्दिष्टम् = बताया गया है; उत् + दिश् + क्त + नपुंसकलिङ्ग, प्रथमा विभक्ति। शिखरिणी छन्द।

क्षुत्क्षामोऽपि जराकृशोऽपि शिथिलप्रायोऽपि कष्टां दशाम्

आपन्नोऽपि विपन्नदीधितिरपि प्राणेषु नश्यत्स्वपि।

मत्तेभेन्द्रविभिन्नकुम्भकवलग्रासैकबद्धस्पृहः

किं जीर्णं तृणमत्ति मानमहतामग्रेसरः केसरी ॥२९॥

अन्वयः—क्षुत्-क्षामः अपि, जरा-कृशः अपि, शिथिल-प्रायः अपि, कष्टां दशाम् आपन्नः अपि, विपन्नदीधितिः अपि, मत्तेभेन्द्रविभिन्न-कुम्भ-कवल-ग्रासैक-बद्ध-स्पृहः मानमहताम् अग्रेसरः केसरी किं प्राणेषु नश्यत्सु अपि जीर्णं तृणम् अत्ति।

अनुवाद—भूख से दुर्बल भी, बुढ़ापे के कारण क्षीण भी, शिथिलप्राय भी, कष्ट से युक्त दशा को प्राप्त भी, कान्ति-रहित भी, केवल मदयुक्त गजराज के फाड़े हुए मस्तक के टुकड़े को ही खाने में बंधी हुई इच्छा वाला, स्वाभिमानियों में मुख्य, सिंह क्या प्राणों के नष्ट होते हुए होने पर भी पुरानी (अर्थात् सूखी) घास को खाता है ?

टिप्पणी—क्षुत्क्षाम:=क्षुधा क्षाम:, भूख से क्षीण। जराकृश:=जरया कृश:, बुढ़ापे से क्षीण। शिथिलप्राय:=प्राय: शिथिल:, जो प्राय: शिथिल रहता हो। कष्टाम्=कष्टपूर्ण। आपन्न:=प्राप्त हुआ, आ√पद्+क्त+पुंल्लिङ्ग, प्रथमा वि०, एकवचन। विपन्न०=विपन्ना दीधिति: यस्य: स:, क्षीण हुई, कान्ति वाला। विपन्न=क्षीण, वि√पद्+क्त खादति। दीधिति:=कान्ति। मत्तेभेन्द्र०=मत्तस्य इभेन्द्रस्य विभिन्नस्य कुम्भकवलस्य ग्रासे एकमात्रं बद्धा स्पृहा यस्य य:, मदयुक्त गजराज के विदीर्ण मस्तक के टुकड़े को खाने में ही एकमात्र बंधी हुई इच्छा वाला। मत्त=मद से युक्त√मद्+क्त इभेन्द्र=इभानाम् इन्द्र:, हाथियों का स्वामी, गजराज। विभिन्न=विदीर्णं, फटा हुआ; वि+भिद्+क्त। कुम्भकवल=मस्तक का टुकड़ा। ग्रास=कोर, खाना √ग्रस्+घञ्। बद्धा=बंधी हुई। स्पृहा=इच्छा। मानमहतां=मानम् एव महत् येषां तेषाम्, मान ही जिनके लिये महान् है, मानधनी, स्वाभिमानी। अग्रेसर:=अग्रे सरति इति अग्रेसर:, आगे चलने वाला, अग्रयायी, प्रमुख। केसरी=केसर (अयाल—सिंह की गरदन के बाल) से युक्त, सिंह, केसर+इनि, पुंल्लिङ्ग, प्रथमा विभक्ति, एकवचन। जीर्णम्=पुराने, सूखे, √जॄ+क्त; नपुंसकलिङ्ग, प्रथमा विभक्ति, एकवचन। तृणम्=घास को। अत्ति=खाता है। शार्दूलविक्रीडित छन्द।

स्वल्पस्नायुवसावशेषमलिनं निर्मांसमपि अस्थिकं
श्वा लब्ध्वा परितोषमेति न तु तत्तस्य क्षुधाशान्तये।
सिंहो जम्बुकमङ्कमागतमपि त्यक्त्वा निहन्ति द्विपं,
सर्व: कृच्छ्रगतोऽपि वाञ्छति जन: सत्त्वानुरूपं फलम् ॥२०॥

अन्वयः—श्वा स्वल्प-स्नायु-वसावशेष-मलिनं निर्मांसम् अपि अस्थिकं लब्ध्वा परितोषम् एति, तत् तु तस्य क्षुधा-शान्तये न। सिंहः अंकम् आगतम् अपि जम्बुकं त्यक्त्वा द्विपं हन्ति। सर्वः जनः कृच्छ्रगतः अपि सत्त्वानुरूपं फलं वाञ्छति।

अनुवाद—कुत्ता थोड़ी सी स्नायु और चर्बी के बचे हुए भाग से मलिन भी हड्डी के टुकड़े को पाकर सन्तोष को प्राप्त कर लेता है। किन्तु वह (हड्डी) उसकी भूख शान्ति के लिये नहीं होती। (अर्थात् भूख शान्त करने में समर्थ नहीं होती)। सिंह गोदी में आते हुये भी गीदड़ को त्याग कर हाथी को मारता है। सब लोग विपत्ति में पड़े हुए भी स्वभाव के अनुरूप फल चाहते हैं।

टिप्पणी—श्वा=कुत्ता। स्वरूप०=स्वल्पयोः स्नायुवसयोः अवशेषेण मलिनम्, थोड़े से स्नायु और चर्बी के बचे हुए भाग से मलिन। स्वल्प=थोड़ा सा। स्नायु=नस। वसा=चर्बी। अवशेष=बचा हुआ भाग। मलिन=गन्दा। निर्मांसम्=निर्गतं मांसं यस्मात् तत्, मांस रहितं। अस्थिकम्=हड्डी के टुकड़े को। इसके स्थान पर 'अस्थि गोः' पाठ भी है। इसका अर्थ होगा 'गाय की हड्डी को'। लब्ध्वा=प्राप्त करके; √लभ्+क्त्वा। एति=प्राप्त करता है। क्षुधा०=क्षुधायाः शान्तये, भूख की शान्ति के लिये। अङ्कम्=गोद में। जम्बूकम्=सियार को। द्विपम्=द्वाभ्यां पिबति इति द्विपः, तम्, दो (सूंड और मुख) से पीने वाला अर्थात् हाथी; द्वि√पा+क+द्वितीया विभक्ति, एकवचन। निहन्ति=मारता है। कृच्छ्रगतः=कृच्छ्रं (कष्टं) गतः, विपत्ति में या कष्ट में पड़े हुए। सत्त्वानुरूपम्=सत्त्वस्य (स्वभावस्य) अनुरूपम्, स्वभाव के अनुरूप। शार्दूलविक्रीडित छन्द।

लाङ्गूलचालनमधश्चरणावपातं,
भूमौ निपत्य वदनोदरदर्शनं च।
श्वा पिण्डदस्य कुरुते गजपुङ्गवस्तु,
धीरं विलोकयति चाटुशतैश्च भुङ्क्ते॥३१॥

अन्वयः—श्वा पिण्डदस्य लाङ्गूल-चालनं, अधः चरणावपातं, भूमौ निपत्य वदनोदर-दर्शनं च कुरुते, गजपुङ्गवः तु धीरं विलोकयति चाटु शतैः च भुङ्क्ते।

अनुवाद—कुत्ता अन्न देने वाले के लिये पूंछ हिलाना, नीचे पैरों पर गिरना और भूमि पर गिर कर मुख और पेट दिखलाना (यह सब) करता है, किन्तु गजराज (भोजन को) धैर्य के साथ देखता है और सैकड़ों खुशामदों से खाता है।

टिप्पणी—पिण्डदस्य = पिण्डं (अन्नं) ददाति इति पिण्डदः, तस्य, अन्न देने वाले के लिये। लाङ्गूल० = लाङ्गूलस्य (पुच्छस्य) चालनम्, पूँछ हिलाना। अधः = नीचे। चरणावपातम् = चरणयोः अवपातम्, चरणों पर गिरना। अवपात = अव √पत् + घञ्। निपत्य = गिरकर, नि √पत् + ल्यप्। वदनोदर० = वदनस्य च उदरस्य च दर्शनम्, मुख और पेट को दिखलाना। गजपुङ्गवः = गजेषु पुङ्गवः (श्रेष्ठ), गजराज, गज-श्रेष्ठ। धीरम् = धैर्य के साथ (क्रिया-विशेषण)। चाटुशतैः = चाटूनां शतैः, सैकड़ों खुशामदों से। चाटु = खुशामद। भुङ्क्ते = खाता है। वसन्ततिलका छन्द।

परिवर्तिनि संसारे मृतः को वा न जायते।
स जातो येन जातेन याति वंशः समुन्नतिम् ॥३२॥

अन्वयः—परिवर्तिनि संसारे वा मृतः न जायते (अथवा को न मृतः को वा न जायते)? येन जातेन वंशः समुन्नतिं याति स जातः।

अनुवाद—परिवर्तनशील संसार में कौन (व्यक्ति) मर कर जन्म नहीं लेता है (अथवा कौन ऐसा है जो मरता नहीं है और जन्म नहीं लेता है अर्थात् मरना जीना तो साथ लगा रहता है) (किन्तु) जिसके उत्पन्न होने से वंश उन्नति को प्राप्त होता है वही (सच्चे अर्थों में) उत्पन्न हुआ है (अर्थात् उसी का जन्म सफल है)।

टिप्पणी—परिवर्तिनि = परिवर्तन से युक्त, परिवर्तनशील (संसार) में, परिवर्तन + इनि + सप्तमी विभक्ति, एकवचन। मृतः = मरा हुआ अर्थात् मरकर

या मरता है। जायते=उत्पन्न होता है। जातेन=उत्पन्न होने से, √जन्+क्त+तृतीया विभक्ति, एकवचन। समुन्नतिम्=उन्नति को, सम्+उद्+√नम्+क्तिन्+द्वितीया विभक्ति, एकवचन। याति=प्राप्त होता है। जातः=उत्पन्न हुआ है। अनुष्टुप् छन्द।

कुसुमस्तवकस्येव द्वयी वृत्तिर्मनस्विनः।
मूर्ध्नि वा सर्वलोकस्य विशीर्यते वनेऽथवा ॥३३॥

अन्वयः—कुसुमस्तवकस्य इव मनस्विनः द्वयी वृत्तिः, सर्वलोकस्य मूर्ध्नि वा अथवा वने विशीर्यते।

अनुवाद—फूल के गुच्छे के समान स्वाभिमानी व्यक्ति की दो स्थितियाँ होती हैं या तो (वह) सब लोगों के सिर पर रहता है अर्थात् सब लोगों में प्रतिष्ठा प्राप्त करता है अथवा वन में नष्ट हो जाता है।

टिप्पणी—कुसुम०=कुसुमानां स्तवकस्य, पुष्पों के गुच्छे के। मनस्विना=स्वाभिमानी व्यक्ति को, मनस्+विनि+पुंलिङ्ग, षष्ठी विभक्ति, एकवचन। द्वयी वृत्तिः=दो व्यापार और स्थितियाँ। इनके स्थान पर पाठभेद 'द्वे गती स्तो' भी है इसका अर्थ है—दो गतियाँ हैं। मूर्ध्नि=सिर पर। विशीर्यते=नष्ट हो जाये, नष्ट हो जाता है।

भाव यह है कि जिस प्रकार फूलों का गुच्छा या तो आभूषण के रूप में लोगों द्वारा सिर पर धारण किया जाता है या वन में नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार स्वाभिमानी व्यक्ति या तो लोगों में प्रतिष्ठा प्राप्त करता हैं या एकान्त में नष्ट हो जाता है। अनुष्टुप् छन्द।

सन्त्यन्येऽपि बृहस्पतिप्रभृतयः सम्भाविताः पञ्चषा-
स्तान् प्रत्येष विशेषविक्रमरुची राहुर्न वैरायते।
द्वावेव ग्रसते दिवाकरनिशाप्राणेश्वरौ भास्वरौ
भ्रातः पर्वणि पश्य दानवपतिः शीर्षावशेषीकृतः ॥३४॥

अन्वयः—बृहस्पति-प्रभृतयः अन्ये अपि सम्भाविताः पञ्चषाः (ग्रहाः) सन्ति (किन्तु) विशेष-विक्रम रुची, एष, राहुः तान् प्रति न वैरायते। भ्रातः, पश्य; पर्वणि शीर्षविशेषी कृतः दानवपतिः भास्वरौ दिनेश्वर-निशा-प्राणेश्वरौ द्वौ एव ग्रसते।

अनुवाद—बृहस्पति इत्यादि दूसरे भी प्रतिष्ठित पाँच-छः (ग्रह) हैं किन्तु विशेष पराक्रम में रुचि रखने वाला यह राहु उनके प्रति बैर नहीं करता है। हे भाई; देखो (अमावस्या और पूर्णिमा के) पर्व में दैत्यराज (राहु) जिसको शीर्षविशेष (=जिसका केवल सिर बचा है) कर दिया गया है—तेजस्वी दिन और रात्रि के स्वामी (सूर्य और चन्द्रमा) (इन) दोनों को ही ग्रसता है।

टिप्पणी—बृहस्पति० = बृहस्पति आदि। सम्भाविताः = प्रतिष्ठित। पञ्चषाः = पाँच-छः। विशेष० = विशेष-विक्रमे रुचिः यस्य सः, विशेष पराक्रम में जिसको रुचि है। वैरायते = वैरं करोति इति वैरायते (नामधातु), वैर करता है; वैर + क्यङ् (य)—लट् लकार, प्रथम पुरुष एकवचन। पर्वणि = (अमावस्या और पूर्णमासी) के पर्व में शीर्ष० = शीर्षं अवशेषः यस्य सः शीर्षविशेषः, अशीर्षविशेषः शीर्षविशेषः कृतः इति शीर्षविशेषीकृतः (च्विप्रत्ययः); जिसको सिर मात्र अवशेष वाला कर दिया गया। दानवपति = दानवानां पतिः, दानवों का स्वामी, राहु। भास्वरौ = तेजस्वी; भास् + वरच् + द्वितीया वि०, द्विवचन। दिनेश्वर० = दिनेश्वरः (सूर्यः) च निशाप्राणेश्वरः (चन्द्रः) च, तौ, दिन के स्वामी (सूर्य) और रात्रि के स्वामी (चन्द्रमा) को। ग्रसते = ग्रसता है।

भाव यह है कि सच्चा वीर अपने समकक्ष वीर का ही सामना करता है. निर्बलों को नहीं सताता। शार्दूलविक्रीडित छन्द।

बहति भुवनश्रेणीं शेषः फणाफलकस्थितां
कमठपतिना मध्येपृष्ठं सदा स च धार्यते।
तमपि कुरुते क्रोडाधीनं पयोधिरनादराद्
अहह महतां निःसीमानश्चरित्रविभूतयः ॥३५॥

अन्वयः—शेषः फणा फलक-स्थितां भुवनश्रेणीं वहति, कमठपतिना च स मध्येपृष्ठं सदा धार्यते । पयोधिः तमपि आदरात् क्रोडाधीनं कुरुते । अहह ! महतां चरित्र-विभूतयः निस्सीमानः (सन्ति) ।

अनुवाद—शेषनाग फण रूपी फलक पर स्थित भुवन-पंक्ति को वहन करता है और वह (शेषनाग) कूर्मराज के द्वारा सदा पीठ के बीच में धारण किया जाता है । समुद्र उन (कूर्मराज) को भी अनादर से (अर्थात् सरलता से) अपनी गोद के अधीन कर लेता है (अर्थात् गोद में रख लेता है) । अहो, महान् लोगों के चरित्रों की विभूतियाँ अपार हैं ।

टिप्पणी—शेषः=शेषनाग । फणा०=फणाः एव फलकं, तस्मिन् स्थिताम्, फन रूपी फलक (=तख्ते) पर स्थित । भुवनश्रेणीम्=भुवनानां श्रेणीम्, लोकों की पंक्ति को । कमठपतिना=कमठानां (कच्छपानां) पतिना; कछुओं के स्वामी (कूर्मराज) के द्वारा । मध्येपृष्ठम्=पृष्ठस्य मध्ये, पीठ अर्थात् पीठ के ऊपर । पयोधिः=समुद्र, पयस् √धा+कि+प्रथमा विभक्ति, एकवचन । अनादरात्=अनादर से अर्थात् सरलता से या लीला से । क्रोडाधीनम्=क्रोडस्य अधीनम् गोद के अधीन, गोद में । कुरुते=करता है, रखता है । अहह=आश्चर्यवाचक अव्यय, अहो ! महताम्=महान् लोगों की । चरित्र-विभूतयः=चरित्राणां विभूतयः, चरित्रों की विभूतियाँ, कार्यों के ऐश्वर्य । निस्सीमानः=सीमा-रहित, अपरिमित । शार्दूलविक्रीडित छन्द ।

वरं पक्षच्छेदः समदमघवन्मुक्तकुलिश-
प्रहारैरुद्गच्छद्बहलदहनोद्गारगुरुभिः ।
तुषाराद्रेः सूनोरहह पितरि क्लेशविवशे
न चासौ सम्पातः पयसि पयसां पत्युरुचितः ॥३६॥

अन्वयः—उद्गच्छद्बहल-दहनोद्गार गुरुभिः समदमघवन् मुक्तकुलिश-प्रहारैः तुषाराद्रेः सूनोः पक्षच्छेदः वरम् (आसीत्), अहह पितरि क्लेश-विवशे पयसां पत्युः पयसि च (तस्य) असौ सम्पातः उचितः न ।

अनुवाद—ऊपर उठती हुई अग्नि की लपटों से प्रबल, मद युक्त इन्द्र द्वारा छोड़े हुए वज्र के प्रहारों से हिमालय के पुत्र (मैनाक) के पंखों का कट जाना अच्छा था, किन्तु (च) अहो, पिता के क्लेश से विवश (पक्षहीन) हो जाने पर जलों के स्वामी (समुद्र) के जल में उसका यह गिरना (=छिपना) अच्छा नहीं था।

टिप्पणी—कहा जाता है कि पहले पर्वतों के पंख हुआ करते थे और वे आकाश में उड़ा करते थे। किन्तु जब वे उड़ते-उड़ते पृथिवी पर उतरते थे तो लोगों की बहुत अधिक हानि करते थे। इससे क्रुद्ध होकर इन्द्र ने अपने वज्र से उनके पंखों को काटना आरम्भ किया। उस समय हिमालय-पुत्र मैनाक जाकर समुद्र में छिप गया।

उद्गच्छद्० = उद्गच्छद्भि. बहलस्य दहनस्य उद्गारैः गुरुभिः, ऊपर उठती हुई घनी अग्नि की लपटों से प्रबल। उद्गच्छद् = ऊपर उठती हुई, उद् + √गम् + शतृ। बहल = घनी। दहन = अग्नि, √दह् + ल्युट्। उद्गार = बाहर निकलने वाली लपटें, उद् + गृ + घञ्। गुरुभिः = प्रबल। समद० = समदेन मघोना मुक्तस्य कुलिशस्य प्रहारैः, मदयुक्त इन्द्र द्वारा छोड़े गये वज्र के प्रहारों से। समद = मदेन सहितः, मद युक्त मुक्त = छोड़े गये, फैंके गये, √मुच् + क्त। कुलिश = वज्र। प्रहारैः = चोटों से। तुषाराद्रेः = तुषारस्य अद्रेः, बर्फ के पर्वत अर्थात् हिमालय के। सूनोः = पुत्र के। पक्षच्छेदः = पक्षानां छेदः, पंखों का कटना। छेद = कटना, छिद् + घञ्। वरम् = अच्छा (था)। अहह = दुःखवाची अव्यय। पितरि = पिता के। क्लेश० = क्लेशेन विवशे, पंख कटने के कारण क्लेश-विवश हो जाने पर। पयसां पत्युः = जलों के स्वामी (समुद्र) के। सम्पातः = गिरना, सम् + √पत् + घञ् + प्रथमा विभक्ति एकवचन। शिखरिणी छन्द।

यदचेतनोऽपि पादैः स्पृष्टः प्रज्वलति सवितुरिनकान्तः।
तत्तेजस्वी पुरुषः परकृतनिकृतिं कथं सहते ॥३७॥

अन्वयः—यत् सवितुः पादैः स्पृष्टः अचेतनः अपि इनकान्तः प्रज्वलति तत् तेजस्वी पुरुषः परकृतनिकृतिं कथं सहते।

अनुवाद—जब सूर्य की किरणों से स्पर्श की गई अचेतन भी सूर्यकान्त मणि जल उठती है, तो तेजस्वी पुरुष दूसरों के द्वारा किये गये अपमान को कैसे सह सकता है।

टिप्पणी—यत् = जब। सवितुः = सूर्य की। पादैः = किरणों से। स्पृष्टः = स्पर्श की गई; स्पृश् + क्त, पुंल्लिङ्ग, प्रथमा विभक्ति, एकवचन। इनकान्तः = इनः (सूर्यः) कान्तः (प्रियः) यस्य सः, सूर्यकान्त मणि। तत् = तो। परकृतम् = परैः कृतम्, दूसरों द्वारा किये गये। निकृतिम् = अपमान को; नि + √कृ + क्तिन्, द्वितीया विभक्ति, एकवचन। सहते = सहते हैं, सह सकते हैं। आर्या छन्द।

सिंहः शिशुरपि निपतति मदमलिनकपोलभित्तिषु गजेषु।
प्रकृतिरियं सत्त्ववतां न खलु वयस्तेजसो हेतुः ॥३८॥

अन्वयः—सिंहः शिशुः अपि मद-मलिन-कपोल-भित्तिषु गजेषु निपतति। इयं सत्त्ववतां प्रकृतिः, वयः खलु तेजसो हेतुः न।

अनुवाद—सिंह बच्चा होते हुये भी मद से मलिन चौड़े कपोलों वाले हाथियों पर आक्रमण करता है। यह बलवानों का स्वभाव है। आयु वास्तव में तेज का कारण नहीं है।

टिप्पणी—मद० = मदेन मलिनाः कपोलानां भित्तयः येषां तेषु, मद से मलिन हैं कपोल रूपी भित्तियाँ जिनकी उन (हाथियों) पर। मद = कुछ-कुछ हाथियों के मस्तक से चूने वाला रस। कपोलभित्ति = कपोल रूपी भित्ति (दीवार) अर्थात् चौड़ा कपोल। निपतति = गिर पड़ता है, टूट पड़ता है, आक्रमण करता है सत्त्ववतां = शक्तिमानों का; सत्त्व + मतुप् पुल्लिङ्ग, षष्ठी विभक्ति, बहुवचन। प्रकृतिः = स्वभाव। वयः = आयु। आर्या छन्द।

जातिर्यातु रसातलं गुणगणैस्तस्याप्यधो गच्छतु,
शीलं शैलतटात्पतत्वभिजनः सन्दह्यतां वह्निना।
शौर्ये वैरिणि वज्रमाशु निपतत्वर्थोऽस्तु नः केवलं,
येनैकेन विना गुणास्तृणलवप्रायाः समस्ता इमे ॥३९॥

अन्वयः---जातिः रसातलं यातु, गुणगणः तस्य अपि अधः गच्छतु, शीलं शैलतटात् पततु, अभिजनः वह्निना सन्दह्यताम्, वैरिणि शौर्ये आशु वज्रं निपततु, नः केवलम् अर्थः अस्तु येन एकेन विना इमे समस्ताः गुणाः तृणलव-प्रायाः सन्ति।

अनुवाद--जाति (चाहे) रसातल को जावे, गुण-समूह (चाहे) उससे भी नीचे चला जावे, शील (चाहे) पर्वत के ढलान से गिर जावे, कुल (चाहे) अग्नि से जल जावे, वैरी शूरता के ऊपर (चाहे) तुरन्त ही वज्र गिर जाय; (परन्तु) हमारे पास केवल धन हो जिस अकेले के बिना ये सारे गुण तिनके के टुकड़े के बराबर हैं।

टिप्पणी—रसातल = पृथिवी के नीचे स्थित सात लोकों (अतल, वितल, सुतल, रसातल, तलातल, महातल और पाताल) में से एक। अधः = नीचे। गच्छतु = चला जावे। इसके स्थान पर गच्छत् पाठ भी है, इसका अर्थ भी वही होगा। शीलम् = सत् स्वभाव। शैलतटात् = शैलस्य तटात्, पर्वत के ढलान से। तट = ढलान। अभिजनः = कुल, वंश, अच्छे कुल में जन्म, देश। वह्निना = अग्नि द्वारा। सन्दह्यताम् = जला दिया जावे। वैरिणी = वैरी (शौर्ये का विशेषण); वैर + इनि + नपुंसकलिङ्ग, सप्तमी विभक्ति एकवचन। शौर्ये = शूरता पर; शूर + ष्यञ् + सप्तमी विभक्ति एकवचन। आशु = शीघ्र, तुरन्त। नः = हमारे पास, हमारे लिये। तृणलवप्राया = प्रायः तृणस्य लवाः, तिनके के टुकड़े के समान। शार्दूलविक्रीडित छन्द।

तानीन्द्रियाण्यविकलानि तदेव कर्म,
सा बुद्धिरप्रतिहता वचनं तदेव।
अर्थोष्मणा विरहितः पुरुषः स एव
त्वन्यः क्षणेन भवतीति विचित्रमेतत् ॥४०॥

अन्वयः—तानि अविकलानि इन्द्रियाणि, तद् एव कर्म, सा (एव) अप्रतिहता बुद्धिः, तदेव वचनम्; अर्थोष्मणा विरहितः स एव पुरुषः तु क्षणेन अन्यः भवति इति एतद् विचित्रम्।

अनुवाद—वे ही निर्विकल इन्द्रियां हैं, वह ही कर्म है, वह (ही) अकुण्ठित बुद्धि है, वही वचन है, किन्तु धन की गरमी से रहित वही मनुष्य क्षण भर में ही अन्य हो जाता है (अर्थात् बिलकुल बदल जाता है), यह विचित्र (बात) है।

टिप्पणी—अविकलानि = न विकलानि, निर्विकल, टूट-फूट या चोट से रहित, सम्पूर्ण। अप्रतिहिता: = न प्रतिहिता, अकुण्ठित, न रुकने वाली, तीक्ष्ण। अर्थोष्मणा = अर्थस्य उष्मणा, धन की गरमी से। विरहित: = रहित, हीन। वसन्ततिलका छन्द।

यस्यास्ति वित्तं स नरः कुलीनः,
स पण्डितः स श्रुतवान् गुणज्ञः।
स एव वक्ता स च दर्शनीयः,
सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ते ॥४१॥

अन्वयः—यस्य वित्तम् अस्ति सः नरः कुलीनः, स पण्डितः, स श्रुतवान्, गुणज्ञः, सः एव वक्ता, स च दर्शनीय। सर्वे गुणाः काञ्चनम् आश्रयन्ते।

अनुवाद—जिसके पास धन है वह मनुष्य कुलीन है, वह पण्डित है, वह शास्त्रों का ज्ञाता है और गुणों को जानने वाला है, वही (अच्छा) वक्ता है और वह ही दर्शन योग्य है। सब गुण सोने (अर्थात् धन) का ही आश्रय लेते हैं।

टिप्पणी—यस्य = जिसका अर्थात् जिसके पास। कुलीन: = अच्छे कुल वाला; कुल + ख (ईन) + पुंल्लिङ्ग, प्रथमा विभक्ति, एकवचन। पण्डित: = विद्वान्; पण्डा (= बुद्धि) + इतच् + पुंल्लिग, प्रथमा विभक्ति, एकवचन। श्रुतवान् = शास्त्रों (श्रुत) से युक्त अर्थात् शास्त्रज्ञ; श्रुत + मतुप् + पुंल्लिग, प्रथमा विभक्ति एकवचन। गुणज्ञ: = गुणान् जानाति इति गुणज्ञः गुणों को जानने वाला; गुण √ ज्ञा + क + पुंल्लिग, प्रथमा विभक्ति, एकवचन। वक्ता = (अच्छा) बोलने वाला; √ वच् + तृच् + पुंल्लिग, प्रथमा विभक्ति, एकवचन। दर्शनीय: = देखने योग्य सुन्दर, √ दृश् + अनीयर् + पुंल्लिग, प्रथमा विभक्ति, एकवचन। काञ्चनम् = सोने के। आश्रयन्ते = आश्रय में चले जाते हैं। उपजाति छन्द।

दौर्मन्त्र्यान्नृपतिर्विनश्यति यतिः सङ्गात्सुतो लालनात्,
　　विप्रोऽनध्ययनात्कुलं कुतनयाच्छीलं खलोपासनात् ।
ह्रीर्मद्यादनवेक्षणादपि कृषिः स्नेहः प्रवासाश्रयान्,
　　मैत्रीचाप्रणयात्समृद्धिरनयात् त्यागात्प्रमादाद्धनम् ॥४२॥

अन्वयः—दौर्मन्त्र्यात् नृपतिः, सङ्गात् यतिः, लालनात् सुतः, अनध्ययनात् विप्रः, कुतनयात् कुलम्, खलोपसनात् शीलम्, मद्यात् ह्रीः, अनवेक्षणात् अपि कृषिः, प्रवासाश्रयात् स्नेहः, अप्रणयात् मैत्री, अनयात् समृद्धिः, त्यागात् च धनं विनश्यति ।

अनुवाद—बुरे मन्त्री होने से (या बुरी सलाह से) राजा, आसक्ति से संन्यासी, लाड़ से पुत्र, न पढ़ने से ब्राह्मण, कुपुत्र से कुल, दुष्टों की सङ्गति से शील, मद्य से लज्जा, देख-भाल न करने से खेती, विदेश-निवास का आश्रय लेने से (अर्थात् विदेश में रहने से) स्नेह, स्नेह के अभाव से मित्रता, अनीति से समृद्धि और त्याग तथा प्रमाद से धन नष्ट हो जाता है ।

टिप्पणी—दौर्मन्त्र्यात्=बुरे मन्त्री होने से या बुरी सलाह से, दुर्मन्त्र (या दुर्मन्त्रिन्)+ष्यञ्+पञ्चमी वि०, एक व० । सङ्गात्—आसक्ति से; सञ्ज्+घञ्+पञ्चमी वि, एक व० । लालनात्=लालन या लाड़-प्यार से; √लल्+ल्युट्+पुंल्लिग पञ्चमी वि०, एक व० । सुतः=पुत्र । कुतनयात्=बुरे पुत्र से । खलोपासनात्=खलस्य उपासनात्, दुष्ट मनुष्य की सङ्गति से । उपासनात्=समीप बैठने से अर्थात् सङ्गति से; उप√आस्+ल्युट्+पञ्चमी वि०, एक व० । मद्यात्=शराब से । ह्रीः=लज्जा । अनवेक्षणात्=न अवेक्षणात्, न देख-भाल करने से । अवेक्षण=अव√ईक्ष्+ल्युट् । प्रवासाश्रयात्=प्रवासस्य आश्रयात्, प्रवास अर्थात् विदेश में विकास का आश्रय लेने से अर्थात् विदेश में निवास करने से । प्रवास=प्र√वस्+घञ् । आश्रय=आ√श्रि+अच् । स्नेहः=प्रेम; √स्निह्+घञ्+प्रथमा वि०, एक व० । अप्रणयात्=न प्रणयात्, प्रेम न होने से । प्रणय=प्र√नी+अच् । अनयात्=न नयात्, अनीति से । नय=नीति; √नी+अच् । प्रमादात्=आलस्य या लापरवाही से; प्र√मद्+घञ्+पञ्चमी वि० एक व० । शार्दूलविक्रीडित छन्द ।

दानं भोगो नाशः तिस्रो गतयो भवन्ति वित्तस्य ।
यो न ददाति न भुङ्क्ते तस्य तृतीया गतिर्भवति ॥४३॥

अन्वयः—वित्तस्य तिस्रः गतयः भवन्ति दानं भोगः नाशः (च) । यो न ददाति न भुङ्क्ते तस्य (धनस्य) तृतीया गतिः भवति ।

अनुवाद—धन की तीन गतियाँ होती हैं—दान, भोग (और) नाश । जो न दान देता है; न भोगता है, उसके धन की तीसरी गति (अर्थात् नाश) होती है ।

टिप्पणी—वित्तस्य=धन की । गतयः=गतियाँ, दशायें √गम्+क्तिन्+स्त्रीलिङ्ग, प्रथमा, वि० बहु व० । दानम्=√दा+ल्युट्+नपुंसक लिंग प्रथमा वि०, एक व० । भोग=√भुज्+घञ् । पुंल्लिग प्रथमा वि०, एकव० । नाशः=√नश्+घञ्+पुंल्लिग, प्रथमा वि०, एक व० । आर्या छन्द ।

मणिः शाणोल्लीढः समरविजयी हेतिनिहतो
मदक्षीणो नागः शरदि सरितः श्यानपुलिनाः ।
कलाशेषश्चन्द्रः सुरतमृदिता बालवनिता
तनिम्ना शोभन्ते गलितविभवाश्चार्थिषु जनाः ॥४४॥

अन्वयः—शाणोल्लीढः मणिः, हेति-निहतः समर-विजयी, मदक्षीणः नागः, शरदि श्यानपुलिनाः सरितः, कला शेषः चन्द्रः, सुरतमृदिता बालवनिता, अर्थिषु गलित-विभवाः जनाः च तनिम्ना शोभन्ते ।

अनुवाद—सान पर खरादी हुई मणि, शस्त्रों से घायल हुआ युद्ध-विजयी; मद के कारण क्षीण हाथी, शरद् ऋतु में सूखे पुलिनों (=बालू के तटों) वाली नदियाँ, जिसकी (केवल एक) कला शेष है ऐसा चन्द्रमा (अर्थात् द्वितीया का चन्द्रमा), सम्भोग में मर्दन की गई बाला स्त्री, याचकों के प्रति (दान देने के कारण) नष्ट हुए वैभव वाले लोग, ये सब कृशता से ही शोभा पाते हैं ।

टिप्पणी—शाणोल्लीढः=शाणेन उल्लीढः, सान द्वारा खरादी गई । उल्लीढः=उत्√लिह्+क्त+पुंल्लिग, प्रथमा वि०, एक व० । हेतिनिहतः=हेतिभिः निहतः, शस्त्रों द्वारा घायल । हेति=शस्त्र, √हन्+क्तिन् ।

निहत:=मारा गया, चोट पहुँचाया गया, घायल; नि√हन्+क्त। समर-विजयी=समरे विजयी, युद्ध में विजयी; वि√जि+अच्=विजय; विजय+इनि+पुंल्लिग, प्रथमा वि० एक व०। मदक्षीण:=मदेन क्षीण: मद से क्षीण अर्थात् मद बहाने के कारण क्षीण। क्षीण:—√क्षि+क्त। नाग=हाथी। शरदि=शरद् ऋतु में। श्यानपुलिना:=श्यानानि पुलिनानि यासां ता:, सूखे हुये बालू के तटों वाली। श्यान √श्यै+क्त। कलाशेष:=कला एव शेष: यस्य स:, जिसकी केवल (एक) कला शेष है। सुरतमृदिता=सुरते मृदिता, सुरत अर्थात् सम्भोग-क्रीडा में मर्दन की गई। बालवनिता=बाला वनिता, बाला स्त्री; युवती। इसके स्थान पर पाठभेद 'बालललना' भी है। इसका भी यही अर्थ होगा। अर्थिषु=याचकों के प्रति अर्थात् याचकों को दान देने के कारण। गलित०=गलिता: (नष्टा:) विभवा: येषां ते, जिनके वैभव नष्ट हो गये हैं वैभव-हीन, ऐश्वर्य-हीन। तनिम्ना=कृशता से, दुबलेपन से, तनु+इमनिच्=तनिमन्, तृतीया वि० एक व० तनिम्ना। शिखरिणी छन्द।

परिक्षीण: कश्चित् स्पृहयति यवानां प्रसृतये
स पश्चात् सम्पूर्णो गणयति धरित्रीं तृणसमाम्।
अतश्चानैकान्त्याद् गुरुलघुतयार्थेषु धनिनाम्
अवस्था वस्तूनि प्रथयति च सङ्कोचयति च ।।४५।।

अन्वय:—कश्चित् परिक्षीण: यवानां प्रसृतये स्पृहयति। पश्चात् सम्पूर्ण: स धरित्रीं तृणसमां गणयति। अत: अर्थेषु अनैकान्त्यात् धनिनां अवस्था गुरु-लघुतया वस्तूनि प्रथयति च सङ्कोचयति च।

अनुवाद—कोई निर्धन जो कि (एक) अंजलि (अन्न) के लिये इच्छुक होता है, बाद में (धन से) पूर्ण हुआ वह पृथिवी को तिनके के समान समझता है। अत: धनों में अनेक अवस्थाओं के कारण धनियों की अवस्था छोटी बड़ी होने से वस्तुओं को घटाती-बढ़ाती है।

टिप्पणी—परिक्षीण=निर्धन मनुष्य, परि√क्षि+क्त, पुंलिङ्ग, प्रथमा विभक्ति, एक वचन। यवानाम्=जौओं की। प्रसृतये=अंजलि के लिये, प्र+

√सृ + क्ति, स्त्रीलिङ्ग, चतुर्थी वि०, एकवचन । सम्पूर्णः = (धन से) पूर्ण हुआ; धनी बना हुआ । धरित्रीम् = पृथिवी को । तृणसमाम् = तृणेन समाम्, तिनके के समान । गणयति = समझता है । अर्थेषु = धनों में । अनैकान्त्यात् = एकान्तस्य भावः ऐकान्त्यम्, न ऐकान्त्यम् अनैकान्त्यम्, तस्मात्, एक अन्त अर्थात् अवस्था वाला न होने के कारण, अनेक अवस्था वाला होने के कारण । गुरु० = गुरुः च लघुः च गुरुलघुः तयोः भावः गुरुलघुता, तया गुरुलघुतया, बड़ी और छोटी होने के कारण । प्रथयति = विस्तार करती है, बढ़ाती है । सङ्कोचयति = संकुचित करती है, घटाती है ।

भाव यह है कि धन की अनेक अवस्थायें होती हैं—कभी वह अधिक होता है, कभी कम । इससे धन रखने वालों की भी अनेक अवस्थायें हो जाती हैं—कभी वह धनी होते हैं कभी निर्धन । उनकी अवस्थाओं के भेद से संसार की वस्तुओं के प्रति भी उनके दृष्टिकोण में अन्तर आ जाता है—कभी वे अधिक मूल्यवान् लगने लगती हैं कभी कम मूल्यवान् । तात्पर्य यह है कि संसार की वस्तुओं में अपना कोई मूल्य नहीं है, वह तो मनुष्यों की निजी (Subjective) दृष्टि है जो उनके मूल्य को निर्धारित करती है । शिखरिणी छन्द ।

राजन् दुधुक्षसि यदि क्षितिधेनुमेतां
तेनाद्य वत्समिव लोकममुं पुषाण ।
तस्मिंश्च सम्यगनिशं परिपोष्यमाणे
नाना फलैः फलति कल्पलतेव भूमिः ।।४६।।

अन्वयः—(हे) राजन्, यदि एतां क्षितिधेनुं दुधुक्षसि तेन अद्य अमुं लोकं वत्सम् इव पुषाण । तस्मिन् च सम्यक् अनिशं परिपोष्यमाणे भूमिः कल्पलता इव नानाफलैः फलति ।

अनुवाद—हे राजन् यदि इस पृथिवी रूपी गाय को दुहना चाहते हो तो इसके लिये इस समय इस प्रजा को बछड़े की तरह पालो । और इस प्रजा के भली-भाँति निरन्तर पालन किये जाने पर पृथिवी कल्पलता के समान नाना प्रकार के फलों से फलती है ।

टिप्पणी—क्षितिधेनुम्=क्षितिः, एव धेनुः, ताम्, पृथिवी रूपी गाय को। दुधुक्षसि=दोग्धुम् इच्छसि, दुहना चाहते हो; √दुह्+सन्+लट् लकार; मध्यम पुरुष, एकवचन। तेन=इस कारण से, इसके लिये। लोकम्=प्रजा को, वत्सम्=बछड़ा। पुषाण=पोषण करो, पालो। अनिषम्=निरन्तर। परिपोष्यमाणे=पोषण किये जाते हुए होने पर, परि√पुषु+शानच्+सप्तमी वि०, एकवचन। कल्पलता=सभी इच्छित वस्तुओं को देने वाली लता। नानाफलैः=अनेक प्रकार के फलों से। वसन्ततिलका छन्द।

सत्याऽनृता च परुषा प्रियवादिनी च
हिंस्रा दयालुरपि चार्थपरा वदान्या।
नित्यव्यया प्रचुरनित्यधनागमा च
वाराङ्गनेव नृपनीतिरनेकरूपा ॥४७॥

अन्वयः—नृपनीतिः वाराङ्गना इव सत्या, अनृता च, परुषा, प्रियवादिनी च, हिंस्रा, दयालुः अपि, अर्थपरा, वदान्या च, नित्यव्यया, प्रचुर-नित्य-धनागमा अनेकरूपा (भवति)।

अनुवाद—राजाओं की नीति वेश्या के समान (कहीं सत्य) बोलने वाली और (कहीं) असत्य (बोलने वाली), (कहीं) कठोर (कहीं) (प्रियभाषिणी), (कहीं हिंसा करने वाली) और (कहीं) दयालु, (कहीं) धन (इकट्ठा करने) में लगी हुई और (कहीं) उदार, (कहीं) नित्य खर्च करने वाली और (कहीं) बहुत अधिक धन की नित्य आय वाली, (इस प्रकार) अनेक रूप वाली होती है।

टिप्पणी—नृपनीतिः=नृपाणां नीतिः, राजाओं की नीति। वाराङ्गना=वेश्या। सत्या=सत्य व्यवहार करने वाली। अनृता=झूठ व्यवहार करने वाली। परुषा=कठोर। प्रियवादिनी=प्रियं वदति इति प्रियवादिनी; प्रिय बोलने वाली। प्रियं√वद्+णिनि—प्रियवादिन्; प्रियवादिन्+ङीप् (ई)—प्रियवादिनी। हिंस्रा=हिंसक स्वभाव वाली; √हिंस्+र+टाप्। अर्थपरा=अर्थः परः यस्याः सा, धन जिसके लिये प्रमुख है। वदान्या=(दान देने में) उदार;

दानशील, √वद् + आन्य (वदति सर्वेभ्य एव दास्यामि इति मनोहरवाक्यम्)। नित्यव्यया = नित्यं व्ययो यस्याः सा, नित्य व्यय (खर्च) वाली। प्रचुरं नित्यधनागमा च = प्रचुरं नित्यं धनागमः यस्या सा, जिसके पास बहुत-सा धन नित्य आता हो। अनेकरूपा = अनेकानि रूपानि यस्याः सा। वसन्ततिलका छन्द।

आज्ञा कीर्तिः पालनं ब्राह्मणानां
दानं भोगो मित्रसंरक्षणञ्च।
येषामेते षड्गुणा न प्रवृत्ताः
कोऽर्थस्तेषां पार्थिवोपाश्रयेण ॥४८॥

अन्वयः—(हे) पार्थिव, येषां (पार्थिवानाम्) आज्ञा, कीर्तिः, ब्राह्मणानां पालनं, दानं, भोगः, मित्र-संरक्षणं च एते षड्गुणाः न प्रवृत्ताः तेषाम् पार्थिव उपाश्रयेण कः अर्थः।

अनुवाद—हे राजन्! जिन (राजाओं) के पास आज्ञा देने की शक्ति, कीर्ति, ब्राह्मणों का पालन, दान, भोग और मित्रों की रक्षा करना, ये छः गुण विद्यमान नहीं हैं उनका आश्रय लेने से क्या लाभ?

टिप्पणी—पार्थिव = राजा; पृथिवी + अण्। आज्ञा = आज्ञा देने की शक्ति, शासन। कीर्ति = वंश; कृत् + क्तिन् + प्रथमा विभक्ति, एकवचन। पालनम् = पोषण, √पाल् + ल्युट् + नपुंसकलिङ्ग, प्रथमा वि०, एकवचन। दानम् = √दा + ल्युट् नपुंसकलिङ्ग, प्रथमा वि०, एकवचन। भोगः = भुज् + घञ् + पुंल्लिङ्ग, प्रथमा वि०; एकवचन। मित्र० = मित्राणां संरक्षणम्, मित्रों की रक्षा करना। संरक्षणम् = सम् + √रक्ष् + ल्युट्। नपुंसकलिङ्ग, प्रथमा वि०, एकवचन। प्रवृत्ताः = विद्यमान है, उपस्थित हैं, प्र√वृत् + क्त + पुंलिङ्ग, प्रथमा वि०, बहुवचन। उपाश्रयेण = आश्रय लेने से, सहारा लेने से, (उन पर) निर्भर रहने से, आ√श्रि + अच् + पुंलिग, तृतीया वि०; एकवचन। कः अर्थः = क्या लाभ। शालिनी छन्द।

यद्धात्रा निजभालपट्टलिखितं स्तोकं महद् वा धनं
तत्प्राप्नोति मरुस्थलेऽपि नितरां मेरौ ततो नाधिकम् ।
तद्धीरो भव वित्तवत्सु कृपणां वृत्तिं वृथा मा कृथाः
कूपे पश्य पयोनिधावपि घटो गृह्णाति तुल्यं जलम् ॥४६॥

अन्वयः—धात्रा यत् निज-भाल-पट्ट-लिखितं स्तोकं महत् वा धनं (पुरुषः) तत् मरुस्थले अपि नितरां प्राप्नोति, मेरौ (अपि) ततः अधिकं न । तत् धीरो भव, वित्तवत्सु कृपणां वृत्तिं वृथा मा कृथाः, पश्य घटः कूपे पयोनिधौ अपि तुल्यं जलं गृह्णाति ।

अनुवाद—ब्रह्मा द्वारा जो अपने मस्तक-पटल पर (अर्थात् भाग्य में) लिखा हुआ थोड़ा या अधिक धन है, पुरुष उसको मरुभूमि में भी अच्छी तरह पा लेता है, (सुवर्ण से निर्मित) मेरु (पर्वत) पर (भी) उससे अधिक नहीं (पाता) । इसलिए धीर बनो; धनवानों के प्रति दीनता का व्यवहार मत करो । देखो कुयें और समुद्र में घड़ा समान जल ग्रहण करता है ।

टिप्पणी—धात्रा = विधाता (ब्रह्मा) के द्वारा, √धा + तृच् + तृतीया वि०, एकवचन । निज० = निजस्य भाल-पट्टे लिखितम्, अपने मस्तक-पटल (अर्थात् भाग्य) में लिखे हुये को । भालपट्ट = मस्तक रूपी पट्टी । स्तोकम् = थोड़ा । मरुस्थले = रेगिस्तान में । नितराम् = अच्छी तरह से । मेरौ = मेरु पर्वत पर । मेरु या सुमेरु पर्वत सोने का बना हुआ माना गया है । धीरः = धैर्यवान् । वित्तवत्सुः = धनवानों के प्रति, वित्त (= धन) + मतुप् + सप्तमी वि०, बहुवचन । कृपणम् = दीन । वृत्तिम् = व्यवहार को । मा कृथाः = मत करो । कृथाः = कृ धातु का आत्मनेपद का लङ् लकार का मध्यम् पु०, एकवचन का रूप 'अकृथाः' होता है । माङ् (मा) के योग में 'अ' नहीं जुड़ता और रूप केवल 'कृथाः' होता है । इसका अर्थ भी आज्ञावाचक हो जाता है । कूपे = कुएँ में । पयोनिधिः = पयसां निधिः पयोनिधिः, तस्मिन्, समुद्र में, पयस् + नि √धा + कि, पुंलिङ्ग, सप्तमी विभक्ति; एकवचन । शार्दूलविक्रीडित छन्द ।

त्वमेव चातकाधारोऽसीति केषां न गोचरः ।
किमम्भोदवरास्माकं कार्पण्योक्ति प्रतीक्षसे ॥५०॥

अन्वयः—(हे) अम्भोदवर, त्वम् एव चातकाधारः असि: इति केषां गोचरः न । अस्माकं कार्पण्योक्तिं किं प्रतीक्षसे ।

अनुवाद—हे श्रेष्ठबादल, तुम ही चातक के आधार हो, यह किनको विदित नहीं है ? (फिर तुम) हमारे दीन वचनों की प्रतीक्षा क्यों करते हो ?

टिप्पणी—अम्भोदवर = अम्भोदेषु (अम्भोदानां वा) वरः अम्भोदवरः, सम्बुद्धौ अम्भोदवर, बादलों में श्रेष्ठ बादल । अम्भोद = अम्भः ददाति इति, जल देने वाला, बादल, अम्भस् दा + क । चातकाधारः = चातकानाम् आधारः, चातकों का आधार । गोचरः = गावः (इन्द्रियाणि) चरन्ति अस्मिन् इति गोचरः, इन्द्रियों का विषय, ज्ञान का विषय, जाना हुआ, ज्ञात-विदित । कार्पण्योक्तिम् = कार्पण्यस्य उक्तिम्, कृपणता की उक्ति को, दीनता के वचन को । कार्पण्य = कृपण + ष्यञ् । उक्ति = वच् + क्तिन् ।

यह अन्योक्ति है । कोई गरीब व्यक्ति किसी धनी को लक्ष्य करके कह रहा है । भाव यह है कि तुम ही गरीबों के जीवनाधार हो, अतः गरीबों को तुम बिना मांगे दो, उनके दीन वचनों की प्रतीक्षा क्यों करते हो । अनुष्टुप् छन्द ।

रे रे चातक ! सावधानमनसा मित्र क्षणं श्रूयताम्,
अम्भोदा बहवो हि सन्ति गगने सर्वेऽपि नैतादृशाः ।
केचिद् वृष्टिभिरार्द्रयन्ति वसुधां गर्जन्ति केचिद् वृथा,
यं यं पश्यसि तस्य तस्य पुरतो मा ब्रूहि दीनं वचः ॥५१॥

अन्वयः—रे रे मित्र चातक ! सावधानमनसा क्षणं श्रूयताम् । गगने हि बहवः अम्भोदाः सन्ति, सर्वे अपि एतादृशाः न । केचिद् वृष्टिभिः वसुधाम् आर्द्रयन्ति, केचिद् वृथा गर्जन्ति । (अतः) यं यं पश्यसि तस्य तस्य पुरतः दीनं वचः मा ब्रूहि ।

अनुवाद—हे मित्र चातक, सावधान मन से क्षण भर के लिये सुनो । आकाश

में बहुत से बादल हैं, किन्तु सब ऐसे (उदार) नहीं हैं। कुछ वर्षा से पृथिवी को भिगो देते हैं, (किन्तु) कुछ व्यर्थ ही गरजते हैं (अतः) जिस-जिस को देखते हो उस-उसके सम्मुख दीन वचन मत कहो।

टिप्पणी—सावधान० =अवधानेन सहितं सावधानम्, सावधानं मनः सावधानमनः, तेन सावधानमनसा, सावधान मन से। क्षणम्=क्षण भर के लिये। श्रूयताम्=सुना जाये, सुनो। अम्भोदाः=बादल; अम्भस्+दा+क+पुंल्लिग; प्रथमा वि०, बहुवचन। एतादृशाः=ऐसे (उदार)। वसुधाम्=पृथ्वी को। आर्द्रयन्ति=भिगो देते हैं, सींच देते हैं; आर्द्र से नाम धातु। वृथा=व्यर्थ। पुरतः=सम्मुख। दीनं वचः=दीन वचन, ब्रूहि=बोल, कह।

यह भी अन्योक्ति हैं। चातक याचक का प्रतीक है और बादल धनवान् व्यक्ति का। कवि का भाव यह है सभी धनवान् व्यक्ति दान देने वाले नहीं होते—कुछ तो खूब दान देते हैं और कुछ प्रदर्शन मात्र करते हैं। अतः याचक को प्रत्येक धनी व्यक्ति के सामने दीनतापूर्वक हाथ नहीं फलाना चाहिये। शार्दूलविक्रीडित छन्द।

अकरुणत्वमकारणविग्रहः,
परधने परयोषिति च स्पृहा।
सुजनबन्धुजनेष्वसहिष्णुता,
प्रकृतिसिद्धमिदं हि दुरात्मनाम् ॥५२॥

अन्वयः—अकरुणत्वं, अकारण-विग्रहः, पर-धने पर-योषिति च स्पृहा, सुजन-बन्धु-जनेषु असहिष्णुता, इदं हि दुरात्मनां प्रकृतिसिद्धम्।

अनुवाद—निर्दयता, बिना कारण लड़ाई, दूसरों के धन के प्रति और पराई स्त्री के प्रति इच्छा, सज्जनों और बन्धुओं के प्रति असहनशीलता, यह (सब) दुष्टों को स्वभाव से ही प्राप्त है।

टिप्पणी—अकरुणत्वम्=नास्ति करुणा यस्य सः अकरुणः तस्य भावः अकरुणत्वम्, करुणा-रहित होना, निर्दयता। अकारण०=न विद्यते कारणं

यस्मिन् सः अकारणः, अकारणः विग्रहः अकारणविग्रहः, बिना कारण लड़ाई। विग्रह = लड़ाई, वि + ग्रह् + अप्। परधने = पराये धन के प्रति। परयोषिति = पराई स्त्री के प्रति। योषित् = स्त्री। स्पृहा = इच्छा। सुजन० = सुजनेषु बन्धुजनेषु च, सज्जनों और बन्धुजनों के प्रति। असहिष्णुता = न सहिष्णुता, सहनशीलता का अभाव। सहिष्णुता = √सह + इष्णुच् + तल् + टाप्। दुरात्मनाम् = दुष्टों का। प्रकृति० = प्रकृत्या सिद्धम्, स्वभाव से ही सिद्ध अर्थात् प्राप्त। द्रुतविलम्बित छन्द।

दुर्जनः परिहर्तव्यो विद्ययाऽलङ्कृतोऽपि सन्।
मणिना भूषितः सर्पः किमसौ न भयङ्करः ॥५३॥

अन्वयः—विद्यया अलङ्कृतः अपि सन् दुर्जनः परिहर्तव्यः। किं मणिना भूषितः असौ सर्पः भयङ्करः न।

अनुवाद—विद्या से सुशोभित होते हुए भी दुष्ट को त्याग देना चाहिये। क्या मणि से भूषित यह सर्प भयङ्कर नहीं होता ?

टिप्पणी—अलङ्कृतः = आभूषित, सुशोभित; अलं + कृ + क्त + पुंल्लिग, प्रथमा वि०, एकवचन। इसके स्थान पर पाठभेद 'भूषितः' भी है। इसका भी अर्थ यही है। सन् = होते हुए, √अस् + शतृ + पुंल्लिग, प्रथमा वि० एकवचन। परिहर्तव्यः = त्यागने के योग्य, त्याग देना चाहिये, परि√हृ + तव्य + पुंल्लिग, प्रथमा वि०, एकवचन। भूषितः = भूष् + क्त + पुंल्लिग, प्रथमा वि०; एकवचन। इसके (भूषित के) स्थान पर पाठ 'अलङ्कृतः भी है। अर्थ वही है। अनुष्टुप् छन्द।

जाड्यं ह्रीमति गण्यते व्रतरुचौ दम्भः शुचौ कैतवं
शूरे निर्घृणता मुनौ विमतिता दैन्यं प्रियालापिनि।
तेजस्विन्यवलिप्तता मुखरता वक्तर्यशक्तिः स्थिरे
तत्को नाम गुणो भवेत्स गुणिनां यो दुर्जनैर्नाङ्कितः ॥५४॥

अन्वयः—ह्रीमति जाड्यम्, व्रत-रुचौ दम्भः, शुचौ कैतवम्, शूरे निर्घृणता, मुनौ विमतिता, प्रियालापिनि दैन्यम्, तेजस्विनि अवलिप्तता, वक्तरि मुखरता स्थिरे अशक्तिः गण्यते । तत् गुणिनां सः कः नाम गुणः भवेत् यः दुर्जनैः न अङ्कितः ।

अनुवाद—(दुष्टों द्वारा) लज्जावान् पुरुष में मूर्खता, व्रत में रुचि रखने वाले में पाखण्ड, पवित्र में कपट, शूर में निर्दयता, मुनि में बुद्धिहीनता, प्रिय बोलने वाले में दीनता, तेजस्वी में अभिमान, (अच्छे) वक्ता में वाचालता (और) स्थिर (चित्त वाले शान्त) में निर्बलता समझी जाती है । अतः गुणियों का वह कौनसा गुण है जो दुष्टों द्वारा कलंकित नहीं किया गया है ।

टिप्पणी—ह्रीमति = लज्जा से युक्त में, ह्री (= लज्जा) + मतुप् + सप्तमी वि०, एकवचन । जाड्यम् = जड़ता, मूर्खता, √जड् + ष्यञ् + नपुंसकलिंग, प्रथमा वि०, एकवचन । व्रत-रुचौ = व्रतेषु रुचिः यस्यः स; व्रतरुचिः, तस्मिन्, व्रतों में रुचि रखने वाले में । दम्भः = पाखण्ड, अभिमान । शुचौ = पवित्र में । कैतवम् = कपट, धूर्तता, कितव (= धूर्त, कपटी) + अण् + नपुंसकलिंग, प्रथमा वि० एकवचन । निर्घृणता = निर्गता घृणा (दया) यस्मात् सः निर्घृणः, तस्य भावः निर्घृणता, दया रहित होना, निर्दयता; निर्घृण + तल् + टाप् । विमतिता = बुद्धि-हीनता । प्रियालापिनि = प्रिय अर्थात् मधुर बोलने वाले में, प्रिया + आ + लप् + णिनि + सप्तमी वि०, एकवचन । दैन्यम् = दीनता, दीन + ष्यञ्, नपुंसकलिंग, प्रथमा वि०, एकवचन । तेजस्विनि = तेजस्वी में, तेजस् + विनि + सप्तमी वि०, एकवचन । अवलिप्तता = गर्व, अभिमान, अव √लिप् + क्त = अवलिप्त, अवलिप्त + तल् + टाप् = अवलिप्तता । वक्तरि = (अच्छे) वक्ता अर्थात् बोलने वाले में, √वच् + तृच् + पुंल्लिग, सप्तमी वि०, एकवचन । मुखरता = वाचालता, बकवादपन, मुखर + तल् + टाप् । स्थिरे = स्थिर स्वभाव वाले व्यक्ति में, शान्त व्यक्ति में । अशक्ति = निर्बलता । भवेत् = हो सकता है । अङ्कित = कलंकित कर दिया गया है; अङ्क + इतच् + पुंल्लिग, प्रथमा वि० एकवचन । शार्दूलविक्रीडित छन्द ।

लोभश्चेदगुणेन किं पिशुनता यद्यस्ति किं पातकैः
सत्यं चेत्तपसा च किं शुचि मनो यद्यस्ति तीर्थेन किम् ।
सौजन्यं यदि किं निजैः सुमहिमा यद्यस्ति किं मण्डनैः
सद्-विद्या यदि किं धनैरपयशो यद्यस्ति किं मृत्युना ॥५५॥

अन्वयः—लोभः चेत् अगुणेन किम्, यदि पिशुनता अस्ति पातकैः किम्, सत्यं च चेत् तपसा किम्, यदि मनः शुचि अस्ति तीर्थेन किम्, यदि सौजन्यम निजैः किम्, यदि सुमहिमा अस्ति मण्डनैः किम्, यदि सद्विद्या अस्ति धनैः किम्, यदि अपयशः अस्ति मृत्युना किम् ।

अनुवाद—यदि लोभ है तो (अन्य) दुर्गुण से क्या प्रयोजन (क्योंकि लोभ ही काफी बड़ा दुर्गुण है), यदि चुगलखोरी है तो (अन्य) पापों से क्या प्रयोजन (क्योंकि चुगलखोरी ही बहुत बड़ा पाप है), और यदि सत्य है तो तप से क्या लाभ (क्योंकि सत्य ही सबसे बड़ा तप है), यदि मन पवित्र है तो तीर्थ (यात्रा) से क्या (लाभ), क्योंकि तीर्थ-यात्रा से प्राप्त होने वाला फल मन के पवित्र होने से ही प्राप्त हो जायेगा अथवा तीर्थ-यात्रा मन को पवित्र करने के लिये होती है, वह पहले से ही पवित्र है तो तीर्थ-यात्रा व्यर्थ है), यदि सज्जनता है तो अपने लोगों से क्या लाभ (क्योंकि सज्जनता होने पर भी सभी लोग अपने ही हो जायेंगे), यदि सुन्दर महिमा(=महानता अर्थात् यश) है तो आभूषणों से क्या लाभ (क्योंकि यश ही सर्वश्रेष्ठ आभूषण हैं), यदि सद्विद्या है तो धन से क्या लाभ (क्योंकि अच्छी विद्या ही सबसे बड़ा धन है), (और) यदि अपयश है तो मृत्यु से क्या प्रयोजन (क्योंकि अपयश मृत्यु से भी बढकर है, जीते जी मृत्यु है) ।

टिप्पणी—अगुणेन=दुर्गुण से । किम्=क्या प्रयोजन या क्या लाभ । पिशुनता=चुगलखोरी, पिशुन (चुगलखोर)+तल्+टाप् । पातकैः=पापों से । शुचिः=पवित्र । सौजन्यम्=सज्जनता, सुजन+ष्यञ्+नपुंसकलिङ्ग, प्रथमा वि०, एकवचन । निजैः=आत्मीयों से, अपने लोगों से अर्थात् सम्बन्धियों और मित्रों से । इसके स्थान पर पाठभेद जनैः भी हैं, इसका अर्थ भी (अपने) लोग ही होगा । सुमहिमा=सुन्दर महिमा अर्थात् यश । महिमा=महत्

इमनिच् + प्रथमा वि०, एकवचन। मण्डनैः = आभूषणों से, √मण्ड् = ल्युट् + नपुंसकलिंग, तृतीया विभक्ति, बहुवचन। शार्दूलविक्रीडित छन्द।

शशी दिवसधूसरो गलितयौवना कामिनी
सरो विगतवारिजं मुखमनक्षरं स्वाकृतेः।
प्रभुर्धनपरायणः सततदुर्गतः सज्जनो
नृपाङ्गणगतः खलो मनसि सप्त शल्यानि मे ॥५६॥

अन्वयः—दिवस-धूसरः शशी, गलितयौवना कामिनी, विगत-वारिजं सरः, स्वाकृतेः अनक्षरं मुखम्, धनपरायणः प्रभुः, सतत दुर्गतः सज्जनः, नृपाङ्गण-गतः खलः (एते) सप्त शल्यानि मम मनसि (सन्ति)।

अनुवाद—दिन में मलिन चन्द्रमा, ढले यौवन वाली स्त्री, कमलहीन सरोवर, सुन्दर आकृति वाले (पुरुष) का निरक्षर (अर्थात् विद्या-रहित) मुख, धन (प्राप्त करने) में लगा हुआ स्वामी, सदा दुर्दशा-युक्त सज्जन, राज-सभा में पहुँचा हुआ दुष्ट (ये) सात काँटे मेरे मन के हैं।

टिप्पणी—दिवस० = दिवसे धूसरः, दिन में धूसर अर्थात् मलिन। शशी = चन्द्रमा, शश + इनि + पुंल्लिग, प्रथमा वि०, एकवचन। गलित० = गलितं यौवनं यस्याः सा, नष्ट हुए यौवन वाली। गलित = गिरा हुआ, नष्ट हुआ, ढला हुआ, गल् + क्त। यौवन = युवन + अण्। कामिनी = प्रेम करने वाली स्त्री, सामान्य स्त्री, काम + इनि + ङीप्। विगत० = विगतानि वारि-जानि, यस्य तत्, जिसके कमल समाप्त हो गये हैं, कमलहीन। वारिज = वारि + जन् + ड। अनक्षरम् = अक्षर-रहित; विद्या-रहित। धनपरायणः = धने परायणः, धन में आसक्त या लीन। प्रभुः = स्वामी। सतत० = सततं दुर्गतः, निरन्तर दुर्दशा को प्राप्त। नृपाङ्गणगतः = नृपस्य अङ्गणं गतः, राज-सभा में गया हुआ। खलः = दुष्ट। शल्यानि = काँटे अर्थात् पीड़ित करने वाली बातें। पृथिवी छन्द।

न कश्चिच्चण्डकोपानामात्मीयो नाम भूभुजाम् ।
होतारमपि जुह्वानं स्पृष्टो दहति पावकः ॥५७॥

अन्वयः—चण्डकोपानां भूभुजां कश्चिद् आत्मीयः नाम न । पावकः स्पृष्टः (सन्) जुह्वानं होतारम् अपि दहति ।

अनुवाद—प्रचण्ड कोप वाले राजाओं को कोई आत्मीय नहीं होता । अग्नि छूने पर होम करते हुये होता को भी जला देती है ।

टिप्पणी—चण्ड० = चण्डः कोपः येषां तेषाम् । भयानक कोप वाले । कोप = √कुप् + घञ् । भूभुजाम् = भुवं भुजन्ति इति भूभुजः तेषाम्, पृथिवी का भोग करने वाले (राजाओं) का; भू √भुज् + क्विप् + षष्ठी वि०, बहुवचन । आत्मीय = अपना आदमी, आत्मन् + छ + पुंल्लिग, प्रथमा वि०, एकवचन । पावकः = अग्नि, √पू + ण्वुल् + पुंल्लिग, प्रथमा वि०, एकवचन । स्पृष्टः = स्पर्श किया गया; स्पृश् + क्त + पुंल्लिग, प्रथमा वि०, एकवचन । जुह्वानम् = होम करते हुए (होता) को; √हु + शानच् + पुंल्लिग, द्वितीया वि० एकवचन । होतारम् = होता को, हवन करने वाले पुरोहित को, √हु + तृच् + पुंल्लिग, द्वितीया विभक्ति एकवचन । दहति = जला देती है । अनुष्टुप् छन्द ।

मौनान्मूकः प्रवचनपटुश्चाटुलो जल्पको वा
धृष्टः पार्श्वे वसति च सदा दूरतश्चाप्रगल्भः ।
क्षान्त्या भीरुर्यदि न सहते प्रायशो नाभिजातः
सेवाधर्मः परमगहनो योगिनामप्यगम्यः ॥५८॥

अन्वयः—मौनात् मूकः प्रवचन-पटुः चाटुलः जल्पकः वा, पार्श्वे सदा वसति च धृष्टः दूरतः च (वसति) अप्रगल्भः, क्षान्त्या भीरुः, यदि न सहते प्रायशः न अभिजातः । सेवा धर्मः परम गहनः योगिनाम् अपि अगम्यः ।

अनुवाद—(सेवक) मौन रहने से गूंगा (और) बोलने में चतुर (होने पर) बकवादी, सदा समीप रहने पर ढीठ और दूर (रहने पर) वाक्पटुता-रहित (या साहस-रहित), क्षमाशील (अर्थात् सहनशील) होने से डरपोक (और) यदि

सहन नहीं करता तो प्रायः अकुलीन (कहा जाता है)। सेवा धर्म सचमुच अति कठिन है और योगियों के लिये भी अगम्य है।

टिप्पणी—मौनात् = चुप रहने से; मुनि + अण् + नपुंसकलिंग, पञ्चमी वि०, एकवचन। मूकः = गूंगा। प्रवचनपटुः = प्रवचने पटुः, बोलने में चतुर। वातुलः = बहुत बोलने वाला। जल्पकः = बकवादी बातूनी; √जल्प् + ण्वुल् + पुंल्लिग, प्रथमा विभक्ति, एकवचन। पार्श्वे = समीप में। वसति = रहने पर, √वस् + शतृ + सप्तमी वि० एकवचन। धृष्ट = ढीठ, धृष् + क्त + पुंल्लिग, प्रथमा वि०, एकवचन। अप्रगल्भ = न प्रगल्भः, जो साहसी या वाकपटु नहीं है। क्षान्त्या = क्षमा से अर्थात् क्षमाशील या सहनशील होने से √क्षम् + क्तिन् + स्त्रीलिंग, तृतीया वि०, एकवचन। भीरुः = डरपोक। अभिजातः = कुलीन, अभि √जन् + क्त + पुंल्लिग, प्रथमा वि० एकवचन। परमगहनः = अत्यन्त गहन अर्थात् कठिन। गहन = दुर्गम, कठिन। √गह + ल्युट्। अगम्यः = न गम्यः, जिसमें गमन न किया जा सके अर्थात् जिसका पालन न किया जा सके। मन्दाक्रान्ता छन्द।

उद्भासिताखिलखलस्य विशृङ्खलस्य
प्राग्जातविस्तृतनिजाधमकर्मवृत्तेः।
दैवादवाप्तविभवस्य गुणद्विषोऽस्य,
नीचस्य गोचरगतैः सुखमास्यते कैः ॥५६॥

अन्वयः—उद्भासिताखिलखलस्य विशृङ्खलस्य प्राग्-जात-विस्तृत-निजाधर्म-कर्म-वृत्तेः दैवाद् अवाप्त-विभवस्य गुणद्विषः, अस्य नीचस्य गोचर-गतैः कैः सुखम् आस्यते।

अनुवाद—सभी दुष्टों को प्रकाशित करने वाले (अर्थात् सभी दुष्टों में प्रमुख), निरंकुश, पूर्व जन्म (के कर्मों) से बढ़ी हुई अपने नीच कर्मों की प्रकृति वाले, भाग्य से ऐश्वर्य (अर्थात् धन) प्राप्त किये हुए (और) गुणों से द्वेष करने वाले, इस नीच के सम्पर्क में आये हुये कौन (लोग) सुख से रहते हैं ?

टिप्पणी—उद्भासिता० = उद्भाषिताः अखिलाः खलाः येन तस्य, सभी दुष्टों को प्रकाशित करने वाले (नीच) के, अर्थात् सभी दुष्टों में प्रमुख के। विश्रृङ्खलस्य = विगता शृङ्खला यस्य सः विशृङ्खलः, तस्य, बन्धन-रहित (स्वच्छन्द, निरंकुश) (नीच) के। प्राग्जात० = प्राग्जातेन, (पूर्वजन्मना) विस्तृता निजाधर्मकर्मणां वृत्तिः यस्य तस्य, पूर्वजन्म (के कर्मों) से बढ़े हुए अपने नीच कर्मों के वृत्ति (प्रवृत्ति या व्यापार) वाले (नीच) के। जात = जन्म; √जन् + क्त। विस्तृत = बढ़े हुए; वि√स्तृ + क्त। वृत्तिः = प्रवृत्ति या व्यापार, √वृत + क्तिन्। दैवात् = भाग्य से। अवाप्त० = अवाप्तः विभवः येन सः, वैभव अर्थात् ऐश्वर्य को प्राप्त करने वाले (नीच) के। अवाप्त = अव√आप् + क्त। विभव = वैभव, ऐश्वर्य, धन वि√भू + अच्। गुणद्विषः = गुणान् द्वेष्टि इति गुणद्विष्, तस्य, गुणों से द्वेष करने वाले (नीच) के; गुण√द्विष् + क्विप् + षष्ठी वि०, एकवचन। गोचरगतैः = गोचरं (विषयं) गतैः, विषय बने हुए अर्थात् सम्पर्क में आये हुए (किन) के द्वारा। सुखम् = सुख के साथ। आस्यते = बैठा जा रहा है, रहा जा रहा है। वसन्ततिलका छन्द।

आरम्भगुर्वी क्षयिणी क्रमेण,
लघ्वी पुरा वृद्धिमती च पश्चात्।
दिनस्य पूर्वार्धपरार्धभिन्ना,
छायेव मैत्री खलसज्जनानाम् ॥६०॥

अन्वयः—खल-सज्जनानां मैत्री दिनस्य पूर्वार्ध-परार्द्ध-भिन्ना छाया इव आरम्भ-गुर्वी क्रमेण क्षयिणी, पुरा लघ्वी पश्चात् च वृद्धिमती (अस्ति)।

अनुवाद—दुष्टों की और सज्जनों की मित्रता (क्रमशः) दिन के पूर्वार्ध और उत्तरार्ध में भिन्न (स्वरूप वाली) छाया के समान आरम्भ में लम्बी, (फिर) क्रमशः क्षीण होने वाली; पहले छोटी और बाद में बढ़ने वाली होती है।

टिप्पणी—खल० = खलानां सज्जनानां च, दुष्टों और सज्जनों की। पूर्वार्द्ध० = पूर्वार्द्धं परार्द्धं च पूर्वार्द्धपरार्द्धे ताभ्याम् भिन्ना, (दिन के) पूर्वार्द्ध

अर्थात् दोपहर के पूर्व और उत्तरार्ध अर्थात् दोपहर के बाद में भिन्न-भिन्न स्वरूप वाली । आरम्भ० = आरम्भे गुर्वी, आरम्भ में लम्बी, गुरु + ङीप् + प्रथमा वि०, एकवचन । क्षयिणी = क्षीणता से युक्त, √क्षि + अच् = क्षय; क्षय + इनि = क्षयिन्, क्षयिन् + ङीप् = क्षयिणी; प्रथमा वि०, एकवचन में क्षयिणी । पुरा = पहले । लघ्वी = छोटी; लघु + ङीप् + प्रथमा वि० एकवचन । वृद्धिमती = वृद्धि से युक्त, लम्बी; √वृध् + क्तिन् = वृद्धि वृद्धि + मतुप् + ङीप् = वृद्धिमती ।

भाव यह है कि जिस प्रकार दोपहर के पूर्व की छाया आरम्भ में बहुत लम्बी होती है और फिर क्षीण होती चली जाती है उसी प्रकार दुष्टों की मित्रता आरम्भ में बहुत अधिक होती है फिर कम होती चली जाती है । जिस प्रकार दोपहर के बाद की छाया आरम्भ में छोटी होती है किन्तु फिर बढ़ती चली जाती है, इसी प्रकार सज्जनों की मित्रता भी आरम्भ में कम होती है किन्तु बाद में बढ़ती चली जाती है । उपजाति छन्द ।

मृगमीनसज्जनानां तृणजलसन्तोषविहितवृत्तीनाम् ।
लुब्धकधीवरपिशुना निष्कारणवैरिणो जगति ॥६१॥

अन्वयः—तृण-जल-सन्तोष-विहित-वृत्तीनां मृग-मीन-सज्जनानां लुब्धक-धीवरपिशुनाः जगति निष्कारण-वैरिणः (भवन्ति) ।

अनुवाद—घास, जल और सन्तोष से जीविका चलाने वाले हिरन, मछली और सज्जनों के क्रमशः व्याध, मछुवे और चुगलखोर संसार में बिना कारण शत्रु होते हैं ।

टिप्पणी—तृण० = तृणं च जलं च सन्तोषः च तृणजलसन्तोषाः, ते, विहिताः वृत्तयः येषां ते, घास, जल और सन्तोष (रूप) निश्चित जीविका वाले अर्थात् जिनका निर्वाह क्रमशः घास, जल और सन्तोष से होता है और इस प्रकार जो किसी को हानि नहीं पहुँचाते । सन्तोष = सम् + तुष् + घञ् । विहित = विधान की गई, निश्चित, वि√धा + क्त । वृत्ति = जीविका; √वृत् +

क्तिन् । मृग० = मृगानां मीनानां सज्जनानां च, हिरन, मछली और सज्जनों के। लुब्धक० = लुब्धकः धीवरः पिशुनः च, व्याध, धीवर और चुगलखोर। लुब्धकः = व्याध, बहेलिया, लुभ् + क्त = लुब्ध, लुब्ध + कन् = लुब्धक । धीवर = मछुआ । पिशुन = चुगलखोर । जगति = संसार में । निष्कारण० = निष्कारणं वैरिणः; बिना कारण वैरी । वैरिणः = वैरयुक्त, वैरी, वैर + इनि + पुंल्लिग, प्रथमा वि०; एकवचन । आर्या छन्द ।

वाञ्छा सज्जनसङ्गमे परगुणे प्रीतिर्गुरौ नम्रता
विद्यायां व्यसनं स्वयोषिति रतिर्लोकापवादाद् भयम् ।
भक्तिः शूलिनि शक्तिरात्मदमने संसर्गमुक्तिः खले
एते येषु वसन्ति निर्मलगुणास्तेभ्यो नरेभ्यो नमः ॥६२॥

अन्वयः—सज्जन-सङ्गमे वाञ्छा, परगुणे प्रीतिः, गुरौ नम्रता, विद्यायां व्यसनम्, स्वयोषिति रतिः, लोकापवादाद् भयम्, शूलिनि भक्तिः, आत्मदमने शक्तिः, खले संसर्गमुक्तिः, एते निर्मल-गुणाः येषु वसन्ति तेभ्यो नरेभ्यो नमः ।

अनुवाद—सज्जनों से मिलने में इच्छा, दूसरे के गुण में प्रसन्नता, बड़े (व्यक्ति) के प्रति नम्रता, विद्या में शौक, अपनी पत्नी में प्रेम, लोक-निन्दा से भय, शिव में भक्ति, अपने को (अर्थात् अपनी इन्द्रियों को) वश में करने की शक्ति, दुष्ट के प्रति सम्पर्क का त्याग—ये निर्मल गुण जिनमें रहते हैं उन लोगों को नमस्कार है ।

टिप्पणी—सज्जन० = सज्जनानां सङ्गमे, सज्जनों के संसर्ग में अर्थात् सत्संग में । सङ्गम = संग, मिलन, सम् + √गम् + अप् । वाञ्छा = इच्छा, √वाञ्छ् + अ + टाप् । परगुणे = परस्य गुणे, दूसरे के गुण में । प्रीतिः = प्रसन्नता, प्रेम, √प्री + क्तिन् + स्त्रीलिंग, प्रथमा वि० एकवचन । गुरौ = बड़े व्यक्ति के प्रति । व्यसनम् = शौक, वि √अस् + ल्युट् + नपुंसकलिङ्ग, प्रथमा विभक्ति, एकवचन । स्वयोषिति = अपनी पत्नी के प्रति । रतिः = प्रेमः √रम् + क्तिन् + स्त्रीलिङ्गः प्रथमा वि०, एकवचन । लोकापवादात् = लोके अपवादात् लोके में निन्दा से ।

अपवाद = अप् + वद् + घञ् । भयम् = √भी + अच् + नपुंसकलिङ्ग, प्रथमा वि०, एकवचन । शूलिनि = शिव के प्रति, शूल + इनि पुल्लिङ्ग, सप्तमी वि०, एकवचन । भक्तिः = √भज् + क्तिन्, + स्त्रीलिङ्ग, प्रथमा विभक्ति, एकवचन । आत्मदमने = आत्मनः दमने, अपने को दमन करने में अर्थात् अपनी इन्द्रियों को वश में रखने में । शक्तिः = √शक् + क्तिन् + स्त्रीलिंग, प्रथमा वि०, एकवचन । खले = दुष्ट के प्रति अर्थात् दुष्ट के । संसर्गः = संसर्गस्य मुक्ति, सम्पर्क का त्याग ।

'एते येषु वसन्ति' की जगह 'येष्वेते निवसन्ति' भी पाठ है । अर्थ वही है । शार्दूलविक्रीडित छन्द ।

विपदि धैर्यमथाभ्युदये क्षमा
सदसि वाक्पटुता युधि विक्रमः ।
यशसि चाभिरुचिर्व्यसनं श्रुतौ
प्रकृतिसिद्धमिदं हि महात्मनाम् ॥६३॥

अन्वयः—विपदि धैर्यम्, अथ अभ्युदये क्षमा, सदसि वाक्-पटुता, युधि विक्रमः, यशसि च अभिरुचिः, श्रुतौ व्यसनम्, इदं हि महात्मनां, प्रकृतिसिद्धम् ।

अनुवाद—विपत्ति में धैर्य तथा उन्नति में क्षमा, सभा में वाक्-चातुर्य; युद्ध में वीरता, यश में अभिरुचि और शास्त्रों (के अध्ययन) का शौक—यह महात्माओं में स्वाभाविक रूप से रहता है ।

टिप्पणी—विपदि = विपत्ति में, वि + पद् + क्विप् + स्त्रीलिंग, सप्तमी वि०, एकवचन । धैर्यं = धीरता, धीर + ष्यञ् + नपुंसकलिंग, प्रथमा वि०, एक० वचन । अभ्युदये = उन्नति में, अभि + उद् √इ + अच् + पुंल्लिङ्ग, सप्तमी वि०, एक व० । क्षमा = सहनशक्ति, दूसरों को माफ करना, क्षम् + अङ् + टाप् + स्त्रीलिंग, प्रथमा वि०, एकवचन । सदसि = सभा में, √सद् + असि + नपुंस[illegible]

लिङ्ग, सप्तमी वि०, एकवचन । वाक्-पटुता = वाक्-चातुर्य, बोलने में निपुणता । वाक् = वाणी, √वच् + क्विप् । पटुता = चतुरता, निपुणता । पटु + तल + टाप् । युधि = युद्ध में । विक्रमः = वीरता । अभिरुचिः = इच्छा, अनुराग । श्रुतौ = शास्त्रों में, वेदों में । व्यसनम् = शौक, वि √अस् + ल्युट् + नपुंसकलिङ्ग, प्रथमा वि०, एकवचन । प्रकृति० = प्रकृत्या सिद्धम्, स्वभाव से प्राप्त, स्वाभाविक रूप में रहने वाले । द्रुतविलम्बित छन्द ।

प्रदानं प्रच्छन्नं गृहमुपगते सम्भ्रमविधिः
प्रियं कृत्वा मौनं सदसि कथनं चाप्युपकृतेः ।
अनुत्सेको लक्ष्म्यां निरभिभवसाराः परकथाः
सतां केनोद्दिष्टं विषममसिधाराव्रतमिदम् ॥६४॥

अन्वयः—प्रच्छन्नं प्रदानम्, गृहम् उपगते सम्भ्रम-विधिः, प्रियं कृत्वा मौनम्, सदसि च अपि उपकृतेः कथनम्, लक्ष्म्याम् अनुत्सेकः, निरभिभवसाराः परकथाः, इदं विषमम् असि-धारा-व्रतं सतां केनोद्दिष्टम् ।

अनुवाद—अत्यन्त गुप्त (रूप से) दान करना, घर आये हुए (अतिथि) का आदर करना, (दूसरों को) प्रिय करके चुप रहना, सभा में भी (दूसरों द्वारा किये गये) उपकार को बतलाना, सम्पत्ति होने पर अभिमानी न होना; निन्दा-रहित दूसरों की चर्चा करना—यह कठोर तलवार की धार पर चलने के समान व्रत सज्जनों को किसने बतलाया है ? (अर्थात् किसी ने नहीं, ये उनके स्वाभाविक गुण हैं) ।

टिप्पणी—प्रच्छन्नम् = अत्यन्त गुप्त, न बतलाया हुआ, प्र √छद् + क्त + नपुंसकलिङ्ग, प्रथमा वि०, एकवचन । दानम् = दान देना, √दा + ल्युट् + नपुंसकलिङ्ग, प्रथमा वि०, एकवचन । उपगते = (घर) आये हुए के प्रति अर्थात् अतिथि के प्रति । सम्भ्रम० = सम्भ्रमस्य (आदरस्य) विधिः (विधानम्) आदर करना, सम्भ्रम = आदर, सम्मान, सम् + भ्रम् + घञ् । विधि = विधान करना, वि √धा + कि । उपकृतेः = (दूसरे द्वारा किये गये) उपकार का, उप +

√कृ + क्तिन् + स्त्रीलिंग, षष्ठी वि०, एकवचन । कथनम् = कहना, √कथ् + ल्युट् + नपुंसकलिंग, प्रथमा वि०, एकवचन । लक्ष्म्याम् = लक्ष्मी में अर्थात् धन-सम्पत्ति होने पर । अनुत्सेकः = न उत्सेकः, अभिमान न होना । उत्सेकः = अभिमान; उत् √सिच् + घञ् । निरभिभव० = निरभिभवः (तिरस्कार-रहितः) सारः यासां ताः तिरस्कार रहित सार वाली अर्थात् जिन चर्चाओं में दूसरों का तिरस्कार नहीं है । अभिभव = तिरस्कार, अपमान; अभि √भू + अप् । सार = निचोड़, तत्व; √सृ + घञ् । परकथाः = परेषां कथाः, दूसरों की चर्चा, दूसरों से सम्बन्धित बातें । विषमम् = कठोर । असि० = असिधारा इव कठिनं व्रतम्, तलवार की धार (पर चलने) के समान कठोर व्रत । सताम् = सज्जनों को । उद्दिष्टम् = बताया गया है; उत् √दिश् + क्त + नपुंसक लिंग, प्रथमा विभक्ति, एकवचन । शिखरिणी छन्द ।

करे श्लाघ्यस्त्यागः शिरसि गुरुपादप्रणयिता
मुखे सत्या वाणी विजयि भुजयोर्वीर्यमतुलम् ।
हृदि स्वस्था वृत्तिः श्रुते अधिगतैकव्रतफलं
विनाप्यैश्वर्येण प्रकृतिमहतां मण्डनमिदम् ॥६५॥

अन्वय—करे श्लाघ्यः त्यागः, शिरसि गुरुपाद प्रणयिता, मुखे सत्या वाणी, भुजयोः अतुलं विजयि वीर्यम्, हृदि स्वस्था वृत्तिः, श्रुते अधिगतैक-व्रत फलम्, इदम् ऐश्वर्येण विना अपि प्रकृतिमहतां मण्डनम् ।

अनुवाद—हाथ में प्रशंसनीय दान, शिर में बड़ों के चरणों में अनुराग, मुख में सत्य वाणी, भुजाओं में अतुलनीय विजय प्राप्त करने वाली वीरता, हृदय में स्वस्थ वृत्ति, शास्त्र (वेद) में केवल ज्ञान-प्राप्ति का व्रत रूप फल, पा बिना सम्पत्ति के भी स्वभाव से महान् लोगों का आभूषण है ।

टिप्पणी—श्लाघ्य = प्रशंसनीय √श्लाघ् + ण्यत् + पुंल्लिंग, प्रथमा वि०, एकवचन । त्यागः = त्याग करना, दान देना; त्यज् + घञ् + पुंल्लिंग, प्रथमा वि०, एकवचन । गुरु० = गुरुपादयोः प्रणयिता, गुरु के चरणों में अनुराग, बड़ों के प्रति सेवा-भाव । प्रणयिता = अनुराग; प्रणयिन् + तल् + टाप् + स्त्रीलिंग,

प्रथमा वि०, एकवचन । अतुलम् = नास्ति तुला यस्य तत्, जिसकी समता न हो, अतुलनीय । विजयि = विजय युक्त, विजय प्राप्त करने वाला; विजय + इनि नपुंसकलिंग, प्रथमा विभक्ति, एकवचन । वीर्यम् = वीरता; वीर + यत् अथवा √वीर + यत् + नपुंसकलिंग, प्रथमा वि०, एकवचन । हृदि = हृदय में । स्वस्था = स्वस्थ, शान्त । श्रुते = कान में, श्रु + क्त + नपुंसकलिंग सप्तमी वि०; एकवचन । अधिगत० = अधिगतस्य एकं व्रतम् एव फलम्, ज्ञान (प्राप्ति) का एक व्रत रूप में फल अर्थात् केवल ज्ञान प्राप्ति फल का ही व्रत लेना । ऐश्वर्येण = धन सम्पत्ति से, (बिना के योग में तृतीया) । प्रकृति-महताम् = प्रकृत्या—महान्तः प्रकृतिमहान्तः तेषाम्, स्वभाव से महान् पुरुषों का । मण्डनम् = आभूषण, √मण्ड् + ल्युट् + नपुंसकलिङ्ग, प्रथमा वि०, एकवचन । पाठभेद = तृतीय पंक्ति में पाठ "हृदि स्वस्था वृत्तिः श्रुतमधिगते च श्रवणयोः" भी है । इसका अर्थ होगा, 'हृदय में स्वच्छ वृत्ति शोभा पाती है' और कानों की (शोभा) शास्त्र अध्ययन करने पर है' । शिखरिणी छन्द ।

सम्पत्सु महतां चित्तं भवत्युत्पलकोमलम् ।
आपत्सु च महाशैलशिलासंघातकर्कशम् ॥६६॥

अन्वयः—महतां चित्तं सम्पत्सु उत्पल-कोमलम्, आपत्सु च महाशैलशिला-संघात-कर्कशम् भवति ।

अनुवाद—महापुरुषों का चित्त सम्पत्तियों के होने पर कमल के समान कोमल और विपत्तियों के होने पर विशाल पर्वत की शिला-समूह के समान कठोर होता है ।

टिप्पणी—महताम् = बड़े लोगों का । सम्पत्सु = सम्पत्तियों के होने पर उत्पलकोमलम् = उत्पलम् इव कोमलम्, कमल के समान कोमल । आपत्सु = विपत्तियों में । महा० = महा शैलस्य शिलानाम् संघातः इव कर्कशम्, विशाल-पर्वत के शिला-समूह के समान कठोर । संघात = समूह; सम् √हन् + घञ् + कर्कश = कठोर । अनुष्टुप् छन्द ।

संतप्तायसि संस्थितस्य पयसो नामापि न ज्ञायते,
मुक्ताकारतया तदेव नलिनीपत्रस्थितं राजते।
स्वात्यां सागरसुक्तिमध्यपतितं तन्मौत्तिकं जायते,
प्रायेणाधममध्यमोत्तमगुणाः संसर्गतो देहिनाम् ॥६७॥

अन्वयः—सन्तप्तायसि संस्थितस्यः पयसः नाम अपि न ज्ञायते, तदेव नलिनीपत्र स्थितं मुक्ताकारतया राजते, तदेव स्वात्यां सागरशुक्तिमध्य-पतितं मौक्तिकं जायते। प्रायेण देहिनाम् अधममध्यमोत्तमगुणाः संसर्गतः (जायन्ते)।

अनुवाद—तपे हुए लोहे पर रखे जल के नाम का भी पता नहीं लगता; वही जल कमलिनी के पत्ते पर स्थित होकर मोती के आकार के रूप में शोभित होता है और वही (स्वाति नक्षत्र के समय) समुद्र की सीप के बीच में गिर कर मोती हो जाता है। प्रायः जीवधारियों के (अर्थात् प्राणियों के) नीच, मध्यम और उत्तम गुण सम्पर्क से उत्पन्न होते हैं।

टिप्पणी—सन्तप्तायसि=सन्तप्तम् अयः सन्तप्तायः, तस्मिन्, तपे हुए लोहे पर। संस्थितस्य=रखे हुये (जल) का; सम्+स्था+क्त+नपुंसक-लिंग, षष्ठी वि०, एकवचन। पयसः=जल का। ज्ञायते=जाता है। नलिनी०=नलिन्याः पत्रे स्थितम्, कमलिनी के पत्ते पर रखा हुआ। मुक्ताकारतया=मुक्तयाः इव आकारः यस्य सः मुक्ताकारः, तस्य भावः मुक्ताकारता, तया, मोती के समान आकार के रूप में। राजते=शोभित होता है। स्वात्याम्=स्वाति (नक्षत्र के निकलने के समय) में। सागर०—सागरस्य शुक्तेः मध्ये पतितम् सागर की सीपी के अन्दर गिरा हुआ। मौक्तिकम्=मोती, मुक्ता+(स्वार्थे) नपुंसकलिंग, प्रथमा वि, एकवचन। जायते=हो जाता है। प्रायेण—प्रायः। देहिनाम्=शरीरधारियों के, देह+इनि+पुंलिंग, षष्ठी वि०; बहुवचन। अधम—अधमः च मध्यमः च उत्तमः च अधममध्यमोत्तमाः गुणाः अधममध्यमोत्तमगुणाः नीच, मध्यम और उत्तम गुण। संसर्गतः—संसर्ग से; सम्पर्क या सङ्ग से; संसर्ग+तसिल् (अव्यय)। शार्दूलविक्रीडित छन्द।

यः प्रीणयेत्सुचरितैः पितरं स पुत्रो,
यद् भर्तुरेव हितमिच्छति तत्कलत्रम् ।
तन्मित्रमापदि सुखे च समक्रियं यद्,
एतत् त्रयं जगति पुण्यकृतो लभन्ते ॥६८॥

अन्वयः—यः सुचरितैः पितरं प्रीणयेत् सः पुत्रः, यद् भर्तुः एव हितम् इच्छति तत् कलत्रम्, यद् आपदि सुखे च समक्रियं तत् मित्रम् । एतत् त्रयं जगति पुण्यकृतः लभन्ते ।

अनुवाद—जो सुन्दर आचरणों से पिता को प्रसन्न करे वह ही (वास्तव में) पुत्र है, जो स्वामी का हित चाहती है वह (ही यथार्थ में) पत्नी है, जो विपत्ति में सुख में समान व्यवहार वाला है वह (ही वास्तव में) मित्र है । इन तीनों को संसार में, पुण्यवान् ही प्राप्त करते हैं ।

टिप्पणी—सुचरितैः=सुन्दर चरितों अर्थात् आचरणों से । पितरम्=पिता को । प्रीणयेत्=प्रसन्न करे, √प्री + विधिलिंग, प्रथमपुरुष, एकवचन । भर्तुः=स्वामी का, पति का, √भृ + तृच् + पुंल्लिग, षष्ठी विभक्ति एकवचन । कलत्रम्=पत्नी । आपदि=आपत्ति में । समक्रियम्=समा क्रिया यस्य तत् समक्रियम्, समान क्रिया अर्थात् आचरण वाला । जगति=संसार में । पुण्यकृतः=पुण्यानि कुर्वन्ति इति पुण्यकृतः, पुण्य करने वाले, पुण्यवान्, पुण्य + √कृ + क्विप्=पुण्यकृत्, पुंल्लिग, प्रथमा वि०, बहुवचन में पुण्यकृतः । लभन्ते=प्राप्त करते हैं । पाठभेद=पहली पंक्ति में 'य प्रीणयेत्' के स्थान पर 'प्रीणाति यः' पाठ भी है । इसका अर्थ होगा जो प्रसन्न करता है । वसन्ततिलका छन्द ।

एको देवः केशवो वा शिवो वा
एकं मित्रं भूपति र्वा यतिर्वा ।
एको वासः पत्तने वा वने वा
एका नारी सुन्दरी वा दरी वा ॥६९॥

अन्वयः—एकः देवः केशवः वा शिवः वा, एकं मित्रम् भूपतिः वा यतिः वा, एकः वासः पत्तने वा वने वा, एका नारी सुन्दरी वा दरी वा ।

अनुवाद—एक ही देव (होना चाहिये)—चाहे (वह) विष्णु हों या शिव हों, एक ही मित्र (होना चाहिये) चाहे राजा हो या योगी हो, एक ही निवास स्थान होना चाहिये, शहर में अथवा वन में, (और) एक ही स्त्री (होनी चाहिये) चाहे (वह कोई) सुन्दरी हो या (पर्वत की) गुफा हो ।

टिप्पणी—केशव = विष्णु । भूपतिः = राजा । यति = योगी । वासः = निवास-स्थान । पत्तने = शहर में, नगर में । दरी = गुफा ।

पाठ भेद—द्वितीय चरण के आरम्भ में 'ह्येको' और चतुर्थ चरण के आरम्भ में 'ह्येका' भी हैं । अर्थ वही होगा । शिखरिणी छन्द ।

नम्रत्वेनोन्नमन्तः परगुणकथनैः स्वान् गुणान् ख्यापयन्तः
स्वार्थान् सम्पादयन्तो विततपृथुतरारम्भयत्नाः परार्थे ।
क्षान्त्यैवाक्षेपरुक्षाक्षरमुखरमुखान् दुर्मुखान् दूषयन्तः
सन्तः साश्चर्यचर्या जगति बहुमताः कस्य नाभ्यर्चनीया ॥७०॥

अन्वयः—नम्रत्वेन उन्नमन्तः, पर-गुणकथनैः स्वान् गुणान् ख्यापयन्तः, परार्थे विततपृथुतरारम्भयत्नाः स्वार्थान् सम्पादयन्तः, क्षान्त्या एव आक्षेप-रुक्षाक्षरमुखरमुखान् दुर्मुखान् दूषयन्तः, साश्चर्य-चर्या जगति बहुमताः सन्तः कस्य अभ्यर्चनीयाः न ।

अनुवाद—नम्रता से ऊपर उठते हुए, दूसरों के गुणों के कथन द्वारा अपने गुणों को प्रकाशित करते हुए, दूसरों के कार्यों में विशालतर आरम्भ वाले प्रयत्नों को करने वाले (और इस प्रकार) स्वार्थों का सम्पादन करते हुए, क्षमा से ही निन्दा से रूखे अक्षरों से वाचाल मुखों वाले दुर्जनों को तिरस्कृत करते हुए, आश्चर्ययुक्त आचरण वाले, संसार में बहुतों के द्वारा सम्मानित सज्जन लोग किसके पूजनीय नहीं है ।

टिप्पणी—नम्रत्वेन = नम्रता से । उन्नमन्तः = ऊपर उठते हुए, उत् √नम् + शतृ + पुंल्लिग, प्रथमा विभक्ति, बहुवचन । पर० = परेषां गुणानां कथनैः दूसरों के गुणों के कहने से । ख्यापयन्तः = प्रकाशित करते हुए, बतलाते हुए, √ख्या + णिच् + शतृ + पुंल्लिग, प्रथमा वि०, बहुवचन । परार्थे = परेषां अर्थे, दूसरों के अर्थ अर्थात् विषय या कार्य में । वितत० = वितताः पृथुतरेषु आरम्भेषु यत्नाः यैः ते, अधिक बड़े (कार्य के) आरम्भ में यत्न करने वाले । वितत = फैलाया है, किया है वि √तन् + क्त । पृथुतर = अधिक विशाल । आरम्भ = (कार्यों का) आरम्भ—आ √रभ् + ञ् (मुम् आगम) । सम्पादयन्तः = सम्पादन करते हुये, पूर्ण करते हुए । क्षान्त्या = क्षमा द्वारा, √क्षम् + क्तिन् + स्त्रीलिंग, तृतीया वि० एकवचन । आक्षेप० = आक्षेपेण रुक्षाक्षरैः मुखराणि मुखानि येषां तान्, निन्दा के कारण रूखे अक्षरों से वाचाल मुखों वाले (दुर्जनों) को । आक्षेप = निन्दा, तिरस्कार । रूक्षाक्षर = रूखे अक्षर । मुखर = वाचाल, बोलने वाले । दुर्मुखान् = दुष्टानि मुखानि येषां तान्, दुष्ट मुखों वालों को, दुर्जनों को । दूषयन्तः = दूषित करते हुए, तिरस्कार करते हुए । साश्चर्य० = आश्चर्येण सहिता चर्या येषां ते, आश्चर्ययुक्त आचरण वाले । चर्या = आचरण √चर् + यत् + टाप् । जगति = संसार में । बहुमताः = बहूनां मताः, बहुतों द्वारा सम्मानित । सन्तः = सज्जन लोग । अभ्यर्चनीयाः = पूजनीय, अभि + अर्च् + अनीयर् + पुंल्लिग, प्रथमा विभक्ति, बहुवचन । स्रग्धरा छन्द ।

भवन्ति नम्रास्तरवः फलोद्गमै-
र्नवाम्बुभिर्भूरिविलम्बिनो घनाः ।
अनुद्धताः सत्पुरुषाः समृद्धिभिः
स्वभाव एवैष परोपकारिणाम् ॥७१॥

अन्वयः—तरवः फलोद्गमैः नम्राः भवन्ति, घनाः नवाम्बुभिः भूरिविलम्बिनः (भवन्ति), सत्पुरुषाः समृद्धिभिः अनुद्धताः भवन्ति । परोपकारिणाम् एषः स्वभाव एव ।

अनुवाद—वृक्ष फलों के आने से नम्र हो जाते हैं, बादल लाये जल से अधिक झुके हुए (हो जाते हैं), सज्जन सम्पत्तियों से उद्धतता-रहित (अर्थात् नम्र) हो जाते हैं। परोपकारियों का यह स्वभाव ही है।

टिप्पणी—तरवः = वृक्ष। फलोद्गमैः = फलानाम् उद्गमैः, फलों के उत्पन्न होने से। उद्गमः = प्रकट होना, लगना; उद् + गम् + घञ्। नम्राः = झुके हुए √नम् + र् + पुंल्लिग, प्रथमा वि० बहुवचन। घनाः = बादल। नवाम्बुभिः = नवैः अम्बुभिः, नये जलों से। भूरि० = अधिक झुके हुए। इसके स्थान पर दूसरा पाठ भूमिविलम्बिनः भी है। इसका अर्थ होगा भूमिपर्यन्त झुके हुए। समृद्धिभिः = सम्पत्तियों से। अनुद्धताः = न उद्धताः, उद्धतता रहित अर्थात् नम्र। उद्धतः = अहंकारी, गंवारू, बदतमीज, उद्√हन् + क्त। परोपकारिणाम् = परोपकारियों का, परोपकार + इनि + पुंल्लिग, षष्ठी विभक्ति, बहुवचन। वंशस्थ छन्द।

श्रोत्रं श्रुतेनैव न कुण्डलेन।
दानेन पाणिर्न तु कङ्कणेन।
विभाति कायः करुणापराणां
परोपकारैर्न तु चन्दनेन ॥७२॥

अन्वयः—श्रोत्रं श्रुतेन एव (विभाति) न चन्दनेन, पाणिः दानेन (विभाति) न तु कङ्कणेन, करुणापराणां कायः परोपकारैः विभाति न तु चन्दनेन।

अनुवाद—कान शास्त्रों को सुनने से ही (शोभा पाता है) कुण्डल से नहीं, हाथ दान से शोभा पाता है कङ्गन से नहीं, दयालु लोगों का शरीर परोपकार से शोभा पाता है, चन्दन से नहीं।

टिप्पणी—श्रोत्रम् = कान, √श्रु + ष्ट्रन् + नपुंसकलिंग, प्रथमा विभक्ति; एकवचन। श्रुतेन = शास्त्रों को सुनने से। पाणिः = हाथ। कङ्कणेन = कङ्गन से। करुणापराणाम् = करुणा परा (श्रेष्ठ) येषां ते करुणापराः, तेषां, करुणाशील या दयालु (मनुष्यों) का। कायः = शरीर। विभाति = शोभित होता है। उपजाति छन्द।

पापान्निवारयति योजयते हिताय
गुह्यं च गूहति गुणान् प्रकटीकरोति।
आपद्गतं च न जहाति ददाति काले
सन्मित्रलक्षणमिदं प्रवदन्ति सन्तः ॥७३॥

अन्वयः—(सन्मित्रम्) पापात् निवारयति, हिताय योजयते, गुह्यं च गूहति, गुणान् प्रकटीकरोति, आपद्गतं च (मित्रं) न जहाति, काले ददाति, सन्तः इदं सन्मित्रलक्षणं प्रवदन्ति।

अनुवाद—(अच्छा मित्र) पाप से बचाता है, हित में लगाता है, छिपाने योग्य को छिपाता है, गुणों को प्रकट करता है, आपत्ति में पड़े हुए (मित्र) को छोड़ता नहीं है और समय पर धन (आदि) देता है—सज्जन लोग इसे अच्छे मित्र का लक्षण बतलाते हैं।

टिप्पणी—निवारयति=बचाता है, रोकता है। हिताय=हितकारी कार्य के लिये। योजयते=नियुक्त करता है, लगाता है। गुह्यम्=गोपनीय, छुपाने योग्य (बुराइयों को), रहस्य को, √गुह् (छिपाना), क्यप्+नपुंसकलिङ्ग, द्वितीया वि०, एकवचन। गूहति=छिपाता है। प्रकटीकरोति=अप्रकटान् प्रकटान् करोति (च्वि प्रत्ययः) प्रकट करता है। आपद्गतम्=आपत्ति को प्राप्त हुए (मित्र) को। जहाति=छोड़ता है। काले=समय पर, आवश्यकता के समय। सन्तः=सज्जन लोग। सन्मित्र०=सन्मित्रस्य लक्षणम्, अच्छे मित्र का लक्षण। प्रवदन्ति=बतलाते हैं। वसन्ततिलका छन्द।

पद्माकरं दिनकरो विकचीकरोति
चन्द्रो विकासयति कैरवचक्रवालम्।
नाभ्यर्थितो जलधरोऽपि जलं ददाति
सन्तः स्वयं परहितेषु कृताभियोगाः ॥७४॥

अन्वयः—दिनकरः पद्माकरं विकचीकरोति, चन्द्रः कैरव-चक्रवालं विकासयति, जलधरः न अभ्यर्थितः अपि जलं ददाति, सन्तः स्वयं परहितेषु कृताभियोगाः (भवन्ति)।

अनुवाद—सूर्य कमल-समूह को खिला देता है, चन्द्रमा कुमुदों के समूह को खिला देता है, बादल भी बिना मांगे ही जल देता है। सन्त लोग स्वयं दूसरों के हित में अच्छी प्रकार उद्योग करने वाले होते हैं।

टिप्पणी—दिनकरः=दिनं करोति इति दिनकरः, सूर्य। पद्माकरम्=पद्मानाम् आकरम्, कमलों के आगार अर्थात् समूह को। विकचीकरोति=अविकचं विकचं करोति (च्वि प्रत्ययः), खिलाता है, विकसित करता है। कैरव०=कैरवाणां (कुमुदानां) चक्रवालम् समूहम्, कुमुदों के समूह को। कैरव=कुमुद। चक्रवाल=समूह। विकासयति=विकसित करता है, खिलाता है, वि√कास्+णिच्+लट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन। जलधरः=जलं धरति इति जलधरः, बादल। अभ्यर्थितः=याचना किया हुआ, मांगा हुआ, अभि√अर्थ+क्त+पुंल्लिग, प्रथमा वि०, एकवचन। सन्तः=सज्जन लोग। परहितेषु=परेषां हिते, दूसरों के हित में। कृताभियोगाः=कृतः अभियोगः यैः ते जिन्होंने अच्छी प्रकार उद्योग किया है। सुकृत=अच्छी तरह किया है। अभियोग=उद्योग, अभि√युज्+घञ्। वसन्ततिलका छन्द।

एके सत्पुरुषाः परार्थघटकाः स्वार्थं परित्यज्य ये
सामान्यास्तु परार्थमुद्यमभृतः स्वार्थाविरोधेन ये।
तेऽमी मानुषराक्षसाः परहितं स्वार्थाय निघ्नन्ति ये
ये निघ्नन्ति निरर्थकं परहितं ते के न जानीमहे ॥७५॥

अन्वयः—एके सत्पुरुषाः ये स्वार्थं परित्यज्य परार्थ-घटकाः, ये तु स्वार्था-विरोधेन परार्थम् उद्यमभृतः ते सामान्याः, ये स्वार्थाय परहितं निघ्नन्ति ते अमी मानुष-राक्षसाः, ये निरर्थकं परहितं निघ्नन्ति ते के न जानीमहे।

अनुवाद—एक (ऐसे अथवा कुछ) सज्जन हैं जो स्वार्थ को त्याग कर दूसरों का कार्य पूरा करने वाले हैं। जो स्वार्थ में बिना बाधा पड़े दूसरों के लिये उद्यम करने वाले हैं वे सामान्य हैं, जो स्वार्थ के लिये दूसरों के हित को

नष्ट करते हैं वे ये लोग मनुष्य रूपी राक्षस (अथवा मनुष्यों में राक्षस) हैं, (परन्तु) जो व्यर्थ में दूसरों के हित का नाश करते हैं वे कौन हैं (हम) नहीं जानते ।

टिप्पणी—एके=एक प्रकार के, कुछ । परित्यज्य=त्याग कर । परार्थघटका=परेषां अर्थानां घटकाः, दूसरों के कार्यों का सम्पादन करने वाले । घटक=साधक, पूरा करने वाला; √घट्+णिच्+ण्वुल् । स्वार्थाविरोधेन=स्वार्थस्य अविरोधेन, स्वार्थ के विरोध न होने पर, स्वार्थ में बाधा न पड़ने पर । परार्थम्=दूसरों के लिये । उद्यम०=उद्यमं बिभ्रति इति उद्यमभृतः, उद्यम करने वाले, प्रयत्नशील; उद्यम+भृ+पुंलिङ्ग, प्रथमा वि०, बहुवचन । निघ्नन्ति=नष्ट करते हैं । मानुष०=मानुषाः एव राक्षसाः, अथवा मानुषेषु राक्षसाः, मनुष्य रूपी राक्षस अथवा मनुष्यों में राक्षस । निरर्थकम्=व्यर्थ में । जानीमहे=(हम) जानते हैं । शार्दूलविक्रीडित छन्द ।

क्षीरेणात्मगतोदकाय हि गुणा दत्ताः पुरा तेऽखिलाः
क्षीरे तापमवेक्ष्य तेन पयसा स्वात्मा कृशानौ हुतः ।
गन्तुं पावकमुन्मनस्तदभवद् दृष्ट्वा तु मित्रापदं,
युक्तं तेन जलेन शाम्यति सतां मैत्री पुनस्त्वीदृशी ॥७६॥

अन्वयः—पुरा क्षीरेण आत्मगतोदकाय हि ते अखिला गुणाः दत्ताः । तेन पयसा क्षीरे तापम् अवेक्ष्य स्वात्मा कृशानौ हुतः । तत् तु मित्रापदं दृष्ट्वा पावकं गन्तुम् उन्मनः अभवत् । तेन जलेन युक्तं पुनः शाम्यति । सतां मैत्री तु ईदृशी (एव) ।

अनुवाद—पहले दूध द्वारा अपने में मिले हुए जल को सम्पूर्ण (अपने) गुण दे दिये गये । उसके द्वारा दूध में ताप (=१. गरमी, २. विपत्ति वा दुःख) को देखकर अपने को अग्नि में डाल दिया गया । वह दूध मित्र (जल) को विपत्ति में देखकर अग्नि में जाने के लिये व्याकुल हो गया । उस जल से युक्त होकर (वह दूध) फिर शान्त हो जाता है, सज्जनों की मित्रता ऐसी (ही) होती है ।

टिप्पणी—पुरा=पहले। क्षीरेण=दूध वाला। आत्म०=आत्मानं गतम् उदकम् आत्मगतोदकम् तस्मै, अपने को प्राप्त हुए (अर्थात् मिले हुए) जल को। अखिलाः=सम्पूर्ण। दत्ताः=दे दिये गये। पयसा=जल द्वारा। ताप=गरमी, विपत्ति। अवेक्ष्य=देखकर। स्वात्मा=अपनी आत्मा, अपने को। कृशानौ=अग्नि में। हुतः=होम कर दिया गया, डाल दिया गया। मित्रापदम्=मित्रस्य (जलस्य) आपदम्, मित्र (जल) की विपत्ति को पावकम्=(अग्नि) में। उन्मनः=उद्गतं मनो यस्य तत् व्याकुल। युक्तम्=मिला हुआ, मिलकर। शाम्यति=शान्त हो जाता है। ईदृशी=इसी प्रकार की।

भाव यह है कि जिस प्रकार सुख-दुख में दूध जल का साथ देता है और जल दूध का, उसी प्रकार सज्जनों की मित्रता होती है—वे सुख-दुख में एक-दूसरे का साथ देते हैं। शार्दूलविक्रीडित छन्द।

इतः स्वपिति केशवः कुलमितस्तदीयद्विषाम्
इतश्च शरणार्थिनां शिखरिणां गणाः शेरते।
इतश्च वडवानलः सह समस्तसंवर्तकैः,
अहो विततमूर्जितं भरसहं च सिन्धोर्वपुः ॥७७॥

अन्वयः—इतः केशवः स्वपिति, इतः तदीय-द्विषां कुलम्। इतः च शरणार्थिनां शिखरिणां गणाः शेरते। इतः च वडवानलः समस्त-संवर्तकैः सह (स्वपिति) अहो, सिन्धोः वपुः विततम् ऊर्जितम् भर-सहं च अस्ति।

अनुवाद—इधर विष्णु सो रहे हैं, इधर उनके शत्रुओं का (अर्थात् राक्षसों का) समूह। इधर (समुद्र के) शरणार्थी पर्वतों के समूह सो रहे हैं और इधर वाडवाग्नि समस्त प्रलयकालीन अग्नियों के साथ (सो रही है)। अहो समुद्र का शरीर (कितना) विस्तृत, बलवान और भार को सहन करने वाला है।

टिप्पणी—इतः=इधर; इदम्+तसिल्। केशवः=विष्णु। तदीयद्विषां=उनके शत्रुओं अर्थात् राक्षसों का। कुलम्=समूह। शरणार्थिनां=शरण में

छाये हुये (पर्वतों) का, देखिये श्लोक ६६ की टिप्पणी। शिखरिणाम्=पर्वतों का, शिखर+इनि+पुंल्लिग, षष्ठी वि०, बहुवचन। गणाः=समूह। वडवानलः=समुद्र में रहने वाली अग्नि, वडवाग्नि। समस्त०=समस्तैः संवर्तकैः प्रलयकालीन अग्नियों के (साथ)। संवर्तक=प्रलयकालीन अग्नि। सिन्धोः=समुद्र का। वपुः=शरीर। विततम्=विस्तृत, वि√तन्+क्त नपुंसकलिंग, प्रथमा वि०, एकवचन। ऊर्जितम्=बलवान्; ऊर्जा+इतच्+नपुंसकलिंग; प्रथमा वि०, एकवचन। भरसहम्=भरं सहते इति भरसहम्, भार को सहन करने वाला। पृथिवी छन्द।

तृष्णां छिन्धि भज क्षमां जहि मदं पापे रतिं मा कृथाः
सत्यं ब्रूह्यनुयाहि साधुपदवीं सेवस्व विद्वज्जनम्।
मान्यान् मानय विद्विषोऽप्यनुनय प्रच्छादय स्वान् गुणान्
कीर्तिं पालय दुःखिते कुरु दयामेतत् सतां लक्षणम् ॥७८॥

अन्वयः—तृष्णां छिन्धि, क्षमां भज, मदं जहि, पापे रतिं मा कृथाः, सत्यं ब्रूहि, साधु-पदवीम् अनुयाहि, विद्वज्जनं सेवस्व; मान्यान् मानय, विद्विषः अपि अनुनय, स्वान् गुणान् प्रच्छादय, कीर्तिं पालय, दुःखिते दयां कुरु, एतद् सतां लक्षणम्।

अनुवाद—लालच का नाश करो, क्षमा करो (या सहन करो), अभिमान का त्याग करो, पाप में अनुराग मत करो, सत्य बोलो, सज्जनों के मार्ग का अनुसरण करो, विद्वानों की सेवा करो, माननीय लोगों का आदर करो, शत्रुओं को भी (विनय से) अनुकूल बनाओ, अपने गुणों को छिपाओ, कीर्ति का पालन करो, दुखियों पर दया करो; यह सज्जनों का लक्षण है।

टिप्पणी—तृष्णाम्=लालच, लोभ। छिन्धि=काटो, नाश करो। क्षमाभज=क्षमा करो या सहन करो। मदम्=अभिमान को। जहि=त्याग दो; √हा+लोट् लकार, मध्यम पुरुष, एकवचन। रतिम्=अनुराग को, प्रसन्नता को। कृथाः=करो; लुङ् लकार, मध्यम पु० एकवचन। माङ् (मा) के योग में अट् (अ) का आगम नहीं हुआ है (न माङ् योगे) और अर्थ भी भूतकाल का न

होकर आज्ञावाचक हो गया है। साधु० = सज्जनों के मार्ग को। अनुयाहि = अनुसरण करो। मान्यान् = माननीयों को, आदरणीयों को; मन् + ण्यत् + पुंल्लिग, प्रथमा वि०, बहुवचन। मानय = मानो, आदर करो। विद्विषः = विद्वेष करने वालों को, शत्रुओं को; वि √द्विष् + क्विप् + पुंल्लिग, द्वितीया वि०; बहुवचन। अनुनय = विनयपूर्वक अनुकूल बनाओ या मनाओ। प्रच्छादय = छिपाओ, ढको अर्थात् आत्म-प्रशंसा मत करो। इसके स्थान पर पाठभेद—प्रख्यापय भी है। उसका अर्थ है प्रकट करो। पालय = पालन करो, रक्षा करो अर्थात् (कीर्ति को) बढ़ाओ। दुःखिते = दुःखी पर, दुःख + इतच् + पुंल्लिग; सप्तमी, विभक्ति, एकवचन। सताम् = सज्जनों का। शार्दूलविक्रीडित छन्द।

मनसि वचसि काये पुण्यपीयूषपूर्णा-
स्त्रिभुवनमुपकारश्रेणिभिः प्रीणयन्तः।
परगुणपरमाणून् पर्वतीकृत्य नित्यं
निजहृदि विकसन्तः सन्ति सन्तः कियन्तः ॥७६॥

अन्वयः—मनसि वचसि काये पुण्य-पीयूष-पूर्णाः, उपकार-श्रेणिभिः त्रिभुवनं प्रीणयन्तः पर-गुण-परमाणून् पर्वतीकृत्य निजहृदि नित्यं विकसन्तः सन्तः कियन्तः सन्ति।

अनुवाद—मन, वचन और शरीर में (= पवित्र या पुण्य रूपी) अमृत से भरे हुए, उपकार-परम्पराओं से तीनों लोकों को प्रसन्न करते हुए, दूसरों के परमाणुओं के समान गुणों को पर्वत के समान बनाकर अपने हृदय में सदैव प्रसन्न होते हुए सज्जन कितने हैं?

टिप्पणी—काये = शरीर में। पुण्य० = पुण्येन पीयूषेण पूर्णाः अथवा पुण्यम् एव पीयूषं पुण्यपीयूषं, तेन पूर्णाः, पवित्र अमृत से भरे हुए या पुण्य रूपी अमृत से भरे हुए। उपकार० = उपकाराणां श्रेणिभिः उपकारों की पंक्तियों या परम्पराओं से अर्थात् लगातार उपकारों को करके। त्रिभुवनम् = त्रयाणां भुवनानां समाहारः त्रिभुवनम्, तम्, त्रिभुवन को। प्रीणयन्तः = प्रसन्न करते हुए,

√प्री + णिच् + शतृ + पुंल्लिग, प्रथमा वि०, बहुवचन । पर० = परगुणानां परमाणून् अथवा परगुणाः परमाणवः इव परगुणपरमाणवः, तान्, दूसरों के परमाणुओं के समान गुणों को । पर्वतीकृत्य = अपर्वतान् पर्वतान् कृत्य (च्वि प्रत्ययः), पर्वत के समान बनाकर अर्थात् दूसरों के थोड़े से भी गुणों को बहुत बढ़ा चढ़ाकर दिखला कर, पर्वत + च्वि + कृ + ल्यप् । निजहृदि = निजस्य हृदि, अपने हृदय में । विकसन्तः = प्रसन्न होते हुए, वि √कस् + शतृ + पुंल्लिग; प्रथमा विभक्ति, बहुवचन । सन्तः = सज्जन । कियन्तः = कितने । मालिनी छन्द ।

> किं तेन हेमगिरिणा रजताद्रिणा वा
> यत्राश्रिता हि तरवस्तरवस्त एव ।
> मन्यामहे मलयमेव यदाश्रयेण
> कङ्कोलनिम्बकुटजा अपि चन्दनाःस्युः ॥८०॥

अन्वयः—तेन हेम-गिरिणा रजताद्रिणा वा किं यत्र आश्रिता हि तरवः ते एव तरवः । मलयमेव मन्यामहे यद् आश्रयेण कङ्कोल-निम्ब-कुटजाः अपि चन्दनाः स्युः ।

अनुवाद—उन सोने के पर्वत (सुमेरु) से या चाँदी के पर्वत (कैलास) से क्या (लाभ) जिस पर आश्रित वृक्ष वे ही वृक्ष रहते हैं । (हम तो) मलय (पर्वत) को ही (श्रेष्ठ) मानते हैं जिसके आश्रय से कङ्कोल (= शीतल चीनी), नीम और कुटज (= कुरैया) वृक्ष चन्दन हो जाते हैं ।

टिप्पणी—हेम-गिरिणा = हेम्नः गिरिणा, सोने के पर्वत (सुमेरु) से । रजताद्रिणा = रजतस्य अद्रिणा, चांदी के पर्वत (कैलास या हिमालय) से । किम् = क्या लाभ । मलयम् = मलयाचल को । मन्यामहे = (हम) मानते हैं अर्थात् आदर देते हैं या श्रेष्ठ मानते हैं । कङ्कोल—कङ्कोलाश्च निम्बाश्च कुटजाश्च, कङ्कोल (शीतल चीनी), नीम और कुटज (कुरैया) के वृक्ष । वसन्ततिलका छन्द ।

रत्नैर्महार्हैस्तुतुषुर्न देवा—
न भेजिरे भीमविषेण भीतिम् ।
सुधां विना न प्रययुर्विरामं
न निश्चितार्थाद्विरमन्ति धीराः ॥८१ ।

अन्वयः—देवाः महार्हैः रत्नैः न तुतुषुः, भीमविषेण भीतिम् न भेजिरे, सुधां विना विरामं न प्रययुः । धीराः निश्चितार्थात् न विरमन्ति ।

अनुवाद—देव लोग बहुमूल्य रत्नों से सन्तुष्ट नहीं हुए, भयानक विष से भय को प्राप्त नहीं हुए, (और इस प्रकार) अमृत के बिना रुके नहीं । (सच है) धीर लोग निश्चय किये हुए विषय में रुकते नहीं हैं ।

टिप्पणी—महार्हैः=महान्ति अर्हाणि महार्हाणि, तैः, बहुमूल्य । तुतुषु=सन्तुष्ट हुए, √तुष्+लिट् ल०, प्रथम पु०, बहुवचन । भीम०=भीमेन विषेण, भयंकर विष से । भीतिम्=भय को; √भी+क्तिन्+स्त्रीलिङ्ग, द्वितीया वि०, एकवचन । भेजिरे=प्राप्त हुए; √भज्+लिट् ल०, प्रथम पु०, बहुवचन । सुधां=अमृत के, बिना के योग में द्वितीया विभक्ति । विरामम्=विराम को; वि√रम्+घञ्+पुंल्लिग, द्वितीया वि०, एकवचन । प्रययुः=प्राप्त हुए, प्र√या+लिट् ल०, प्रथम पु०, बहुवचन । धीराः=धैर्यवान् लोग । निश्चितार्थात्=निश्चितात् अर्थात्, निश्चित विषय से अर्थात् जिस काम को उठा लिया है उससे । विरमन्ति=रुकते हैं, रम् धातु आत्मनेपदी है किन्तु वि के योग में परस्मैपदी हो जाती । उपजाति छन्द ।

क्वचित् भूमौ शय्या, क्वचिदपि च पर्यङ्कशयनः
क्वचिच्छाकाहारी क्वचिदपि च शाल्योदनरुचिः ।
क्वचित्कन्थाधारी क्वचिदपि च दिव्याम्बरधरो
मनस्वी कार्यार्थी न गणयति दुःखं न च सुखम् ॥८२॥

अन्वयः—क्वचित् भूमौ शय्या, क्वचिदपि च पर्यङ्कशयनः, क्वचित् शाकाहारी, क्वचिदपि च शाल्योदनरुचिः, क्वचित् कन्थाधारी, क्वचिदपि च दिव्याम्बर-धरः, कार्यार्थी मनस्वी न दुःखं न च सुखं गणयति ।

अनुवाद—कहीं भूमि पर शय्या है, और कहीं पलंग पर सोने वाला है, कहीं शाक खाने वाला है और कहीं भात में रुचि वाला है, कहीं गुदड़ी पहनने वाला है और कहीं दिव्य वस्त्रों को धारण करने वाला है, (इस प्रकार) कार्य को करने का इच्छुक मनस्वी दुःख और सुख पर ध्यान नहीं देता है।

टिप्पणी—शय्या=सोने का स्थान, सोना; √शी+क्यप्+टाप्+ प्रथमा वि०, एकवचन। पर्यङ्क०=पर्यङ्कं शयनं यस्य सः, पलंग जिसकी शय्या है, पलंग पर सोने वाला। इसके स्थान पर पाठभेद 'पर्यङ्कशयनम्' भी है— इसका अर्थ है पर्यङ्के शयनम्, पलंग पर सोना। शयन=सोना, √शीङ्+ ल्युट्। शाकाहारी=शाक के आहार अर्थात् भोजन वाला, शाक खाने वाला; इसके स्थान पर पाठभेद शाकाहार: भी है। इसका अर्थ है शाकस्य आहारः, शाक का भोजन। शाल्योदन०=शाल्योदने रुचिः यस्य सः, भात में रुचि वाला, भात को पसन्द करने वाला अर्थात् भात खाने वाला। शाल्योदन=भात। कन्थाधारी=कन्था धारयतीति कन्थाधारी, कन्था (अर्थात् गुदड़ी) को धारण करने वाला; कन्था+√धृ+णिनि+पुंल्लिङ्ग, प्रथमा वि०, एकवचन। दिव्याम्बर०=दिव्यम् अम्बरं धरति इति दिव्याम्बरधरः, अथवा दिव्यस्य अम्बरस्य धरः, दिव्य वस्त्रों को धारण करने वाला। अम्बर=वस्त्र। धर=धारण करने वाला, धृ+अच्। कार्यार्थी=कार्यस्य अर्थी, कार्य का इच्छुक अर्थात् कार्य करने का इच्छुक। मनस्वी=श्रेष्ठ मन वाला, धीर पुरुष, मनस्+विनि +पुंल्लिग, प्रथमा वि०, एकवचन। गणयति=गिनता है, ध्यान देता है। शिखरिणी छन्द।

ऐश्वर्यस्य विभूषणं सुजनता शौर्यस्य वाक्संयमो
ज्ञानस्योपशमः श्रुतस्य विनयो वित्तस्य पात्रे व्ययः।
अक्रोधस्तपसः क्षमा प्रभवितुर्धर्मस्य निर्व्याजता,
सर्वेषामपि सर्वकारणमिदं शीलं परं भूषणम् ॥८३॥

अन्वयः—सुजनता ऐश्वर्यस्य भूषणम्, वाक्-संयमः शौर्यस्य, उपशमः ज्ञानस्य, विनयः श्रुतस्य, पात्रे व्ययः वित्तस्य, अक्रोधः तपसः, क्षमा प्रभवितुः निर्व्याजता धर्मस्य, सर्वकारणम् इदं शीलम् सर्वेषाम् परं भूषणम्।

अनुवाद—सज्जनता ऐश्वर्य का भूषण है, वाणी का संयम, शूरता का शान्ति: ज्ञान का विनय, शास्त्रज्ञ का (अच्छे) पात्र पर खर्च करना धन का; क्रोध न करना तप का, क्षमा करना प्रभावशाली का (और) निष्कपटता धर्म का (भूषण है), किन्तु सब गुणों का कारण यह शील सभी का श्रेष्ठ भूषण है।

टिप्पणी—सुजनता = सज्जनता; सुजन तल् + टाप् + प्रथमा वि०, एकवचन। ऐश्वर्यस्य = धन-सम्पत्ति होने का। वाक्-संयमः = वाचां संयमः, वाणी का संयम। संयम = सम् √ यम् + अप्। शौर्यस्य = शूरता का; शूर + ष्यञ् + नपुंसकलिंग, षष्ठी वि०, एकवचन। उपशमः = शान्ति; उप √ शम् + घञ् + पुंल्लिङ्ग प्रथमा वि०, एकवचन। श्रुतस्य = शास्त्रज्ञ का। विनयः = नम्रता वि √ नी + अण्; + पुंल्लिङ्ग, प्रथमा वि०, एकवचन। पात्रे = अच्छे पात्र पर व्ययः = खर्च; √ व्यय + अच् + पुंल्लिङ्ग, प्रथमा वि०, एकवचन। अक्रोधः = न क्रोधः, क्रोध न करना। क्षमा = क्षमा करना, सहन करना। प्रभवितुः = प्रभावशाली का, समर्थ का प्र √ भू + तृच + पुंल्लिङ्ग षष्ठी वि०, एकवचन। निर्व्याजता = निष्कपटता। सर्व० = सर्वेषां कारणम्, सब (गुणों) का कारण। शीलम् = अच्छा स्वभाव। परम् = श्रेष्ठ। शार्दूलविक्रीडित छन्द।

निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु,
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा,
न्याय्यात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः ॥८४॥

अन्वयः—नीतिनिपुणाः निन्दन्तु यदि वा स्तुवन्तु, लक्ष्मीः समाविशतु यथेष्टं वा गच्छतु, अद्यैव मरणम् अस्तु युगान्तरे वा, धीरा न्याय्यात् पथः पदं न प्रविचलन्ति।

अनुवाद—नीति में निपुण लोग चाहे निन्दा करें चाहे प्रशंसा, लक्ष्मी आये या इच्छानुसार चली जाये, आज ही मृत्यु हो जाये या दूसरे युग में, धीर लोग उचित मार्ग से पैर नहीं हटाते हैं।

टिप्पणी—नीति० = नीतिषु निपुणः, नीतियों में चतुर लोग। निन्दन्तु = निन्दा करें। स्तुवन्तु = स्तुति करें । समाविशतु = आये । यथेष्टम् = इष्टम् अनतिक्रम्य, इच्छानुसार, जहाँ चाहे वहाँ । मरणम् = मृत्यु √मृ + ल्युट् + नपुंसकलिंग, प्रथमा वि०, एकवचन। युगान्तरे = अन्यत् युगं युगान्तरम् तस्मिन्, दूसरे युग में। धीराः = धैर्यशाली लोग। न्याय्यात् = न्याय के अनुसार या उचित (पथ) से; न्याय + यत् + पुंल्लिग, पञ्चमी विभक्ति, एकवचन। पथः = मार्ग से। पदम् = पग, पैर। प्रविचलन्ति = हटाते हैं। वसन्ततिलका छन्द।

भग्नाशस्य करण्डपीडिततनोर्म्लानेन्द्रियस्य क्षुधा,
कृत्वाखुर्विवरं स्वयं निपतितो नक्तं मुखे भोगिनः। 51
तृप्तस्तत्पिशितेन सत्वरमसौ तेनैव यातः पथा,
लोकाः पश्यत दैवमेव हि नृणां वृद्धौ क्षये कारण् ॥८५॥

अन्वयः—भग्नाशस्य करण्ड-पीडित-तनोः क्षुधा म्लानेन्द्रिस्य भोगिनः मुखे नक्तं विवरं कृत्वा आखुः स्वयं निपतितः। तत्पिशितेन तृप्तः असौ सत्वरं तेनैव पथा यातः। लोकाः पश्यत, नृणां वृद्धौ क्षये दैवमेव कारणम्।

अनुवाद—नष्ट हुई जीवन की आशा वाले, पिटारी में दबे हुए शरीर वाले, भूख के कारण शिथिल इन्द्रियों वाले, सर्प के मुख में, रात्रि में (पिटारी में) छेद करके चूहा स्वयं गिर पड़ा। उसके मांस से तृप्त हुआ वह (सर्प) शीघ्रता से उसी मार्ग से बाहर चला गया। लोगों देखो, मनुष्यों की उन्नति और अवनति में भाग्य ही कारण है।

टिप्पणी—भग्नाशस्य = भग्ना आशा यस्य तस्य, नष्ट हुई (जीवन की) आशा वाले (सर्प) के। भग्न = टूटी हुई, नष्ट, √भञ्ज् + क्त। करड० = करण्डेन करण्डे वा पीड़िता तनुः यस्य तस्य, पिटारी से (या पिटारी में) दबे हुए शरीर वाले (सर्प) के। करण्ड = पिटारी। क्षुधा = भूख से, क्षुध् (= भूख) + तृतीया विभक्ति, एकवचन। म्लानेन्द्रियस्य = म्लानि इन्द्रियाणि यस्य तस्य, शिथिल इन्द्रियों वाले (सर्प) के। म्लान = शिथिल, थकी हुई, √म्लै + क्त।

भोगिनः = भोगः (फणः) अस्ति अस्य इति भोगी, तस्य, फन से युक्त, सर्प के, भोग + इनि + पुंल्लिग, षष्ठी वि०, एकवचन । विवरम् = छिद्र । नक्तम् = रात्रि में, रात के समय (अव्यय) । आखुः = चूहा । निपतितः = गिर पड़ा । तत्पिशितेन = तस्य पिशितेन, उस (चूहे के) मांस से । पिशित = मांस । सत्वरम् = शीघ्रता से । पथा = मार्ग से । यातः = चला गया, (बाहर) निकल गया । लोकाः = हे लोगों । पश्यत = देखो । वृद्धौ = वृद्धि में, उन्नति में √वृध् + क्तिन् = वृद्धि + सप्तमी वि०, एकवचन । क्षये = नाश में, अवनति में, √क्षि + अच् + पुंल्लिङ्ग, सप्तमी वि०, एकवचन । दैवम् = भाग्य शार्दूलविक्रीडित छन्द ।

पातितोऽपि कराघातैरुत्पतत्येव कन्दुकः । 50
प्रायेण साधुवृत्तानामस्थायिन्यो विपत्तयः ॥८६॥

अन्वयः—कराघातैः पातितः अपि कन्दुकः उत्पतति एव, प्रायेण साधुवृत्तानां विपत्तयः अस्थायिन्यः ।

अनुवाद—हाथ की चोट से गिराई गई भी गेंद उछलती ही है । प्रायः सच्चरित्र लोगों की विपत्तियाँ अस्थायी होती हैं ।

टिप्पणी—कराघातैः = करस्य आघातैः, हात की चोट से । आघात = चोट आ√हन् + घञ् । पातिताः = गिराई गई, √पत् + णिच् + क्त = पुंल्लिङ्ग, प्रथमा वि०, एकवचन । कन्दुकः = गेंद । उत्पतति = उछलति है । साधु० = साधूनि वृत्तानि येषां तेषाम्, अच्छे चरित्र वाले लोगों की । विपत्तयः = विपत्तियाँ: वि√पद् + क्तिन्—विपत्ति, विपत्ति + प्रथमा वि०, बहुवचन, विपत्तयः । अस्थायिन्यः = न स्थायिन्य; अस्थायी, अधिक समय तक न रहने वाली । स्थायिन्यः = स्था + णिनि, (युक्)—स्थायिन्, स्थायिन् + ङीप्—स्थायिनी, स्थायिनी + प्रथमा वि०, बहुवचन—स्थायिन्यः । अनुष्टुप् छन्द ।

50

आलस्यं हि मनुष्याणां शरीरस्थो महान् रिपुः ।
नास्त्युद्यमसमो बन्धुः कृत्वा यं नावसीदति ॥८७॥

अन्वयः—आलस्यं ही मनुष्याणां शरीरस्थः महान् रिपुः । उद्यमः समः बन्धुः नास्ति यं कृत्वा (नरः) न अवसीदति ।

अनुवाद—आलस्य निश्चित रूप से मनुष्यों के शरीर में स्थित महान् शत्रु है । उद्यम के समान कोई बन्धु नहीं है, जिसे करके कोई (मनुष्य) दुःखी नहीं होता ।

टिप्पणी—शरीरस्थः=शरीरे तिष्ठति इति शरीरस्थः, शरीर में रहने वाला । रिपुः=शत्रु । उद्यमसमः=उद्यमेन समः, उद्यम के समान । अवसीदति =दुःखी होता है; अव√सद्+लट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन । अन्तिम चरण में कृत्वा यं 'नावसीदति' के स्थान पर पाठभेद—'यत्कृत्वा नावसीदति' भी है । अर्थ वही होगा । अनुष्टुप् छन्द ।

छिन्नोऽपि रोहति तरुः,
क्षीणोऽप्युपचीयते पुनश्चन्द्रः ।
इति विमृशन्तः, सन्तः,
सन्तप्यन्ते न ते विपदा ॥८८॥

48

अन्वयः—छिन्नः अपि तरुः रोहति; क्षीणः अपि चन्द्रः पुनः उपचीयते, इति विमृशन्तः ते सन्तः विपदा न सन्तप्यन्ते ।

अनुवाद—कटा हुआ वृक्ष भी बढ़ जाता है, क्षीण हुआ भी चन्द्रमा फिर से पूर्ण होता है, ऐसा सोचते हुए वे सज्जन लोग विपत्ति से दुःखी नहीं होते ।

टिप्पणी—छिन्न=कटा हुआ; छिद्+क्त+पुंल्लिग, प्रथमा वि०, एकवचन । तरुः=वृक्ष । रोहति=बढ़ जाता है । क्षीणः=घटा हुआ, दुबला हुआ, √क्षि+क्त+पुंल्लिग, प्रथमा वि०, एकवचन । उपचीयते=बढ़ जाता है, पुष्ट हो जाता है । विमृशन्तः=सोचते हुए; वि√मृश्+शतृ+पुंल्लिग, प्रथमा

वि०, बहुवचन । सन्तः = सज्जन लोग । विपदा = विपत्ति से; वि०√पद् से क्विप्—विपद्; विपद् + स्त्रीलिंग, तृतीया वि०, एकवचन । सन्तप्यन्ते = दुःखी होते हैं ।

पाठ-भेद—अन्तिम चरण में 'न ते विपदा' के स्थान पर 'न विलुप्ता लोके' भी पाठ है । इस पाठ के अनुसार अर्थ होगा—संसार में विपत्तिग्रस्त (विलुप्ताः) (भी दुःखी) नहीं होते हैं । किन्तु इस पाठ में छन्दोभंग होगा । आर्या छन्द ।

नेता यस्य बृहस्पतिः प्रहरणं वज्रं सुराः सैनिकाः
स्वर्गो दुर्गमनुग्रहः किल हरेरैरावतो वारणः ।
इत्यैश्वर्यबलान्वितोऽपि बलभिद् भग्नः परैः सङ्गरे
तद् व्यक्तं वरमेव दैवशरणं धिग् धिग् वृथा पौरुषम् ।।८६।।

अन्वयः—बृहस्पतिः यस्य नेता, वज्रं प्रहरणम्, सुराः सैनिकाः स्वर्गः दुर्गम्, हरेः अनुग्रहः ऐरावतः वारणः किल, इति ऐश्वर्य-बलान्वितः अपि बलभिद् सङ्गरे परैः भग्नः । तद्व्यक्तं दैवशरणम् एव वरम्, पौरुषं वृथा, धिक्-धिक् ।

अनुवाद—(देवताओं का गुरु) बृहस्पति जिसका नेता था, वज्र अस्त्र था, देवतागण सैनिक थे, स्वर्ग किला था, विष्णु का (जिस पर) अनुग्रह था, ऐसा ऐरावत (जिसका) हाथी था, इस प्रकार एश्वर्य और बल से युक्त भी इन्द्र युद्ध में शत्रुओं द्वारा हरा दिया गया । इससे स्पष्ट है कि भाग्य की शरण ही अच्छी है, पौरुष व्यर्थ है, (इस पौरुष को) धिक्कार है ।

टिप्पणी—बृहस्पति = देवताओं का गुरु । प्रहरणम् = अस्त्र, प्र + √हृ + ल्युट् + नपुंसकलिङ्ग, प्रथमा विभक्ति, एकवचन । दुर्गम् = किला । हरेः = विष्णु का । अनुग्रहः = कृपा । ऐरावतः = इन्द्र का हाथी । वारणः = हाथी, वृ √णिच् + ल्युट् + पुंल्लिग, प्रथमा वि०, एकवचन । ऐश्वर्य० = ऐश्वर्येण बलेन च अन्वितः, ऐश्वर्य और बल से युक्त । बलभिद् = बलं भिनत्ति इति बलभिद्, बल नामक राक्षस को मारने वाला, बल √भिद् + क्विप् + पुंल्लिग, प्रथमा वि०, एकवचन । सङ्गरे = युद्ध में । परैः = शत्रुओं द्वारा । भग्नः = नष्ट कर दिया गया, हरा दिया गया, भञ्ज् + क्त + पुंल्लिग, प्रथमा वि०, एकवचन । व्यक्तम्

=स्पष्ट है। दैवशरणम्=दैवम् एव शरणम् या देवस्य शरणम्, भाग्यम् रूपी शरण या भाग्य की शरण। शरण=√शॄ (=वध करना, नाश करना)+ल्युट् (शृणाति दुःखम् अनेन)। वरम्=अच्छी। वृथा=व्यर्थ है। धिक्-धिक् (इस पौरुष को) धिक्कार है। शार्दूलविक्रीडित छन्द।

कर्मायत्तं फलं पुंसां बुद्धिः कर्मानुसारिणी।
तथापि सुधिया भाव्यं सुविचार्यैव कुर्वता ॥९०॥

अन्वयः—पुंसां फलं कर्मायत्तम्, बुद्धिः कर्मानुसारिणी, तथापि सुधिया सुविचार्य एव कुर्वता भाव्यम्।

अनुवाद—मनुष्यों का फल कर्म (भाग्य) के अधीन है, बुद्धि कर्म (=भाग्य) का अनुसरण करने वाली है फिर भी अच्छी बुद्धि वाले को अच्छी तरह विचार कर (कर्म) करना चाहिये।

टिप्पणी—पुंसाम्=मनुष्यों का। फलम्=इस लोक में प्राप्त होने वाले धन—सम्पत्ति आदि फल जो पिछले जन्म के कर्मों के अनुसार ही मिलते हैं। कर्मायत्तम्=कर्मणाम् आयत्तम्, कर्मों के अधीन अर्थात् पिछले जन्म के कर्म के आधीन; पिछले जन्म के अनुसार ही हमारा इस जन्म का भाग्य होता है। अतः पिछले जन्म के कर्म ही हमारे भाग्य हैं। आयत्तम्=आधीन; आ√यम्+क्त+नपुंसकलिंग, प्रथमा वि०, एकवचन। कर्मानुसारिणी=कर्म अनुसरति इति कर्मानुसारिणी, कर्म का अनुसरण करने वाली; यह माना गया है कि हमारी इस जन्म की बुद्धि का निर्माण भी पिछले जन्म के कर्मों पर अर्थात् हमारे भाग्य पर निर्भर है। अनुसारिणी=अनु√सृ+णिनि+ङीप्+प्रथमा वि०, एकवचन। सुधिया=अच्छी बुद्धि वाले (मनुष्य) के द्वारा। सुविचार्य=अच्छी तरह विचार कर। कुर्वता भाव्यम्=करते हुए होना चाहिये, करना चाहिये। कुर्वता √कृ+शतृ=कुर्वत्, कुर्वत्+पुंल्लिंग, तृतीया वि०, एकवचन। भाव्यम्=भू+ण्यत्+नपुंसकलिंग, प्रथमा वि०, एकवचन। अनुष्टुप् छन्द।

खल्वाटो दिवसेश्वरस्य किरणैः सन्तापितो मस्तके
वाञ्छन् देशमनातपं विधिवशात्तालस्य मूलं गतः ।
तत्राप्यस्य महाफलेन पतता भग्नं सशब्दं शिरः
प्रायो गच्छति यत्र भाग्यरहितस्तत्रैव यान्त्यापदः ॥९१॥

अन्वयः—दिवसेश्वरस्य किरणैः मस्तके सन्तापिताः खल्वाटः अनातपं देशं वाञ्छन् विधि-वशात् तालस्य मूलं गतः । तत्रः अपि पतता महाफलेन अस्य शिरः सशब्दं भग्नम् । प्रायः भाग्य-रहितः यत्र गच्छति तत्रैव आपदः यान्ति ।

अनुवाद—सूर्य की किरणों द्वारा मस्तक पर तपाया हुआ (एक) गंजा धूप रहित स्थान को चाहता हुआ भाग्यवश ताड़ वृक्ष के नीचे गया । वहां भी गिरते हुए विशाल (ताड़ के) फल से इसका सिर आवाज के साथ फट गया । प्रायः भाग्य-रहित (मनुष्य) जहां जाता है वहीं आपत्तियां आ जाती हैं ।

टिप्पणी—दिवसेश्वरस्य = दिवसस्य ईश्वरस्य, दिन के स्वामी अर्थात् सूर्य की । सन्तापिताः = तपाया हुआ; सम् √तप् + णिच् + क्त + पुंल्लिग, प्रथमा वि०, एकवचन । खल्वाटः = गंजा । अनातपम् = नास्ति आतपं यस्मिन् तम्, धूप-रहित (स्थान) को । देशम् = स्थान को । वाञ्छन् = चाहता हुआ, वाञ्छ् √शतृ + पुंल्लिग, प्रथमा वि०, एकवचन । विधिवशात् = भाग्यवश । तालस्य = ताड़ की । मूलम् = जड़ में अर्थात् नीचे । पतता = गिरते हुये; √पत् + शतृ + नपुंसकलिग, तृतीया वि०, एकवचन । सशब्दम् = आवाज सहित । भग्नम् = फट गया । आपदः = आपत्तियां; आ √पद् + क्विप्—आपद् + प्रथमा वि०, बहुवचन । यान्ति = जाति है । शार्दूलविक्रीडित छन्द ।

शशिदिवाकरयोर्ग्रहपीडनम्
गजभुजङ्गमयोरपि बन्धनम् ।
मतिमतां च विलोक्य दरिद्रतां
विधिरहो बलवान् इति मे मतिः ॥९२॥

अन्वयः—शशि-दिवाकरयोः ग्रह-पीडनम्, गज-भुजङ्गमयोः अपि बन्धनम्, मतिमतां च दरिद्रतां विलोक्य, अहो विधिः बलवान् इति मे मतिः।

अनुवाद—सूर्य और चन्द्रमा के ग्रहों (राहु और केतु) द्वारा पीड़ित किये जाने को, हाथी और सर्प के भी बन्धन को और बुद्धिमानों की दरिद्रता को देखकर, अहो भाग्य (ही) बलवान् है, यह मेरा विचार है।

टिप्पणी—शशि० = शशिनः दिवाकरस्य च, चन्द्रमा और सूर्य के। ग्रह० = ग्रहेन पीडनम्, ग्रह अर्थात् राहु और केतु द्वारा पीड़ित किये जाने को अर्थात् ग्रहण किये जाने को। गज० = गजस्य भुजङ्गमस्य च, हाथी और सर्प के। बन्धनम् = बन्धन में पड़ने को; √बन्ध + ल्युट् + नपुंसकलिंग, द्वितीया विभक्ति एकवचन। मतिमताम् = बुद्धिमानों की; मति + मतुप्—मतिमत्; मतिमत् + षष्ठी विभक्ति, एकवचन। दरिद्रताम् = गरीबी को। विलोक्य = देखकर; वि + √लोक् + ल्यप्। विधिः = भाग्य। मतिः = विचार, सम्मति। द्रुतविलम्बित छन्द।

सृजति तावदशेषगुणाकरं
पुरुषरत्नमलङ्करणं भुवः।
तदपि तत्क्षणभङ्गि करोति चेद्
अहह कष्टमपण्डितता विधेः ॥९३॥

अन्वयः—(विधिः) तावत् अशेषगुणाकरं भुवः अलङ्करणम् पुरुषरत्नं सृजति। तदपि चेद् क्षण-भङ्गि करोति, अहह! विधेः अपण्डितता कष्टम्।

अनुवाद—(विधाता) सम्पूर्ण गुणों की खान, पृथ्वी के भूषण, पुरुष रूपी रत्न को रचता है; उसको भी यदि (वह) क्षणभंगुर बना देता है (तो) अहो, विधाता की मूर्खता कष्टकर है।

टिप्पणी—अशेष० = अशेषगुणानाम् आकरम्, सम्पूर्ण गुणों की खान (पुरुष-रत्न) को। भुवः = पृथ्वी के। अलङ्करणम् = आभूषण (पुरुष-रत्न) को। पुरुष० = पुरुषः एव रत्नम् अथवा पुरुषः रत्नम् इव, पुरुष रूपी रत्न को

या रत्न के समान पुरुष को । सृजति = रचता है । चेत् = यदि । क्षणभङ्गि = क्षणे भङ्गि, क्षण भर में नष्ट हो जाने वाला । विधेः = विधाता की । अपण्डिततता = न पण्डितता, मूर्खता; पण्डा (बुद्धि) + इतच्—पण्डित; पण्डित + तल् + टाप्—पण्डितता । कष्टम् = कष्टदायक । द्रुतविलम्बित छन्द ।

पत्रं नैव यदा करीरविटपे दोषो वसन्तस्य किं
नोलूकोऽप्यवलोकते यदि दिवा सूर्यस्य किं दूषणम् ।
धारा नैव पतन्ति चातकमुखे मेघस्य किं दूषणम्
यत्पूर्वं विधिना ललाटलिखितं तन्मार्जितुं कः क्षमः ॥९४॥

अन्वयः—यदा करीर-विटपे पत्रं न एव (भवति) किं वसन्तस्य दोषः ? यदि उलूकः अपि दिवा न अवलोकते सूर्यस्य किं दूषणम् ? (यदि) चातक-मुखे धारा न एव मेघस्य किं दूषणम् ? विधिना यत् पूर्वं ललाट-लिखित तत् मार्जितुं कः क्षमः ?

अनुवाद—यदि करील वृक्ष की शाखा पर पत्ता नहीं होता (तो) वसन्त का क्या दोष है ? यदि उल्लू भी दिन में नहीं देखता तो सूर्य का क्या दोष है ? यदि चातक के मुख में (जल की धारायें नहीं गिरती) तो मेघ का क्या दोष है ? विधाता के द्वारा जो पहले ही मस्तक पर लिख दिया गया है उसे मिटाने में कौन समर्थ है ?

टिप्पणी—यदा = जब, यदि । करीर० = करीरस्य विटपे, कलील (के) वृक्ष की शाखा पर । विटप = शाखा । पत्रम् = पत्ते । उलूकः = उल्लू । दिवा = दिन में । अवलोकते = देखता है । दूषणम् = दोष, √दूष् + ल्युट् + नपुंसकलिङ्ग, प्रथमा वि०, एकवचन । ललाट० = ललाटे लिखितम्, माथे पर लिख दिया गया है । मार्जितुम् = मिटाने में; √मार्ज् + तुमुन् । क्षमः = समर्थः, √क्षम् + अच्, पुंल्लिग, प्रथमा विभक्ति, एकवचन । शार्दूलविक्रीडित छन्द ।

नमस्यामो देवान्ननु हतविधेस्तेऽपि वशगाः,
विधिर्वन्द्यः सोऽपि प्रतिनियतकर्मैकफलदः।
फलं कर्मायत्तं किममरगणैः किञ्च विधिना,
नमस्तत्कर्मभ्यो विधिरपि न तेभ्यः प्रभवति ॥६५॥

अन्वयः—देवान् नमस्यामः, ननु ते अपि हतविधेः वशगाः, विधिर्वन्द्यः, सः अपि प्रति-नियत कर्मैकफलदः, फलं कर्मायत्तं, अमरगणैः किम् किञ्च विधिना। तत् कर्मभ्यः नमः येभ्यः विधिः अपि न प्रभवति।

अनुवाद—हम देवताओं को नमस्कार करते हैं, (किन्तु) वे भी दुष्ट विधाता के वश में हैं। (तो फिर) विधाता (ही) वन्दनीय है, किन्तु वह भी केवल निश्चित कर्म के अनुसार फल देने वाला है। फल कर्म के अधीन है। (अतः) देवताओं से क्या (प्रयोजन) और विधाता से क्या (प्रयोजन)? उन कर्मों को नमस्कार है जिन पर विधाता का भी वश नहीं है।

टिप्पणी—नमस्यामः = नमस्कार करते हैं; नमस् (नाम धातु) + क्यच् लट् लकार, उत्तम पुरुष, बहुवचन। ननु० = निश्चयपूर्वक। हतविधेः = हतस्य विधेः, मरे विधाता के, दुष्ट विधाता के, 'हत' शब्द का प्रयोग गाली के रूप में किया गया है। वशगाः = वशं गच्छन्ति इति वशगाः, वश में जाने वाले, आधीन। वन्द्यः = वन्दनीय है; √वन्द् + ण्यत् + पुंलिंग, प्रथमा विभक्ति, एक-वचन। प्रति० = नियतं नियतं प्रति इति प्रतिनियतम्, प्रतिनियतं कर्म प्रतिनियत-कर्म, प्रतिनियत कर्मणः एकस्य फलदः, केवल निश्चित कर्म का ही फल देने वाला। फलदः = फलं ददाति इति फलदः, फल देने वाला; फल√दा + क् = फलद, फलद + पुंलिंग, प्रथमा वि०, एकवचन = फलदः। कर्मायत्तम् = कर्मणः आयत्तम्, कर्म के आधीन। आयत्त = आधीन; आ√यत् + क्त। अमरगणैः = अमराणां गणैः देव-समूहों से, देवताओं से। कर्मभ्यः = कर्मों को, नमः के योग में चतुर्थी विभक्ति। येभ्यः = जिन पर। प्रभवति = प्रभावशाली होता है। शिखरिणी छन्द।

ब्रह्मा येन कुलालवन्नियमितो ब्रह्माण्डभाण्डोदरे,
विष्णुर्येनदशावतारगहने क्षिप्तो महासङ्कटे ।
रुद्रो येन कपालपाणिपुटको भिक्षाटनं कारितः,
सूर्यो भ्राम्यति नित्यमेव गगने तस्मै नमः कर्मणे ॥९६॥

अन्वयः—येन ब्रह्मा कुलालवत् ब्रह्माण्ड-भाण्डोदरे नियमितः; येन विष्णुः दशावतार-गहने महा-सङ्कटे क्षिप्तः, येन रुद्रः कपाल-पाणि-पुटकः भिक्षाटनं कारितः, (येन) सूर्यः नित्यम् एव गगने भ्राम्यति, तस्मै कर्मणे नमः ।

अनुवाद—जिसने ब्रह्मा को कुम्हार के समान ब्रह्माण्ड रूपी बरतन के अन्दर बन्द कर दिया, जिसने विष्णु को (मत्स्य आदि) दस अवतारों के कारण कठिन महासङ्कट में डाल दिया, जिसने महादेव को हाथ रूपी पिटारी में कपाल लिये हुए भिक्षाटन कराया, (जिससे) सूर्य नित्य ही आकाश में घूमता है, उस कर्म को नमस्कार है ।

टिप्पणी—कुलालवत्=कुम्हार के समान । ब्रह्माण्ड०=ब्रह्माण्डम् एव भाण्डम् ब्रह्माण्डभाण्डम् तस्य उदरे, ब्रह्माण्ड रूपी पात्र के मध्य में । भाण्ड=बरतन । उदर=पेट, मध्य भाग । दशावतार०=दशावतारैः गहने, दस अवतारों के कारण कठिन (महासंकट) में । महा०=महति संकटे, बड़े संकट में । क्षिप्तः=डाल दिया; √क्षिप्+क्त+पुंल्लिग, प्रथमा वि०, एकवचन । रुद्रः=महादेव । कपाल०=कपालः पाणिपुटके यस्य, कपाल जिसके हाथ रूपी पिटारी में है । इसके स्थान पर पाठभेद—'कपालपाणिपुटके' भी है, किन्तु इसमें समास ठीक नहीं खुलेगा और इसका ठीक अर्थ नहीं लगेगा । भिक्षाटनम्=भिक्षायै अटनम्, भिक्षा के लिये घूमना । अटनः=घूमना; √अट्+ल्युट् । कारितः=कराया; √कृ+णिच्+क्त+पुंल्लिग, प्रथमा वि, एकवचन । भ्राम्यति=घूमता है । कर्मणे=कर्म को; नमः के योग में चतुर्थी विभक्ति । नमः=नमस्कार है । शार्दूलविक्रीडित छन्द ।

नैवाकृतिः फलति नैव कुलं न शीलं,
विद्याऽपि नैव न च यत्नकृताऽपि सेवा।
भाग्यानि पूर्वतपसा खलु सञ्चितानि,
काले फलन्ति पुरुषस्य यथैव वृक्षाः ॥९७॥

अन्वयः—आकृतिः न एव फलति, न एव कुलं न शीलम्; विद्या अपि न एव (फलति), न च यत्न-कृता अपि सेवा। पुरुषस्य पूर्वतपसा सञ्चितानि भाग्यानि खलु काले फलन्ति, यथा एवं वृक्षाः (काले फलन्ति)।

अनुवाद—न तो आकृति ही फलती है, न कुल ही, न शील। विद्या भी नहीं (फलती), और न यत्न-पूर्वक की गई सेवा। पुरुष के पूर्व जन्म के तप से एकत्रित भाग्य ही (समय पर फलते) हैं। जैसे वृक्ष (समय पर फलते हैं)।

टिप्पणी—आकृतिः=आकार, स्वरूप; आ √कृ + क्तिन् + स्त्रीलिंग प्रथमा वि०, एकवचन। शीलम्=अच्छा स्वभाव। यत्नकृता=यत्नेन कृता; यत्नपूर्वक की गई। यत्न=यत् + नङ्। पूर्वतपसा=पूर्वेण तपसा, पहले अर्थात् पूर्वजन्म के तप से। सञ्चितानि=एकत्रित; सम् √चि + क्त + नपुंसकलिंग, प्रथमा वि०, एकवचन। काले=समय पर। वसन्ततिलका छन्द।

वने रणे शत्रुजलाग्निमध्ये,
महार्णवे पर्वतमस्तके वा।
सुप्तं प्रमत्तं विषमस्थितं वा,
रक्षन्ति पुण्यानि पुराकृतानि ॥९८॥

अन्वयः—पुराकृतानि पुण्यानि वने, रणे, शत्रु-जलाग्नि मध्ये, महार्णवे, पर्वत-मस्तके वा सुप्तं, प्रमत्तं विषम-स्थितं वा (नरं) रक्षन्ति।

अनुवाद—पहले किये गये पुण्य वन में, रण में, शत्रु जल और अग्नि के बीच में, महासागर में अथवा पर्वत की चोटी पर सोये हुए बहुत अधिक मस्त अथवा विपत्ति-ग्रस्त (मनुष्य) की रक्षा करते हैं।

टिप्पणी—पुराकृतानि = पहले किये गये अर्थात् पूर्वजन्म में किये गये। शत्रु० = शत्रुः च जलं च अग्निः च शत्रुजलाग्नयः, तेषां मध्ये, शत्रु जल व अग्नि के मध्य में। महार्णवे = महति अर्णवे, महान् समुद्र में। अर्णव = समुद्र। पर्वत० = पर्वतस्य मस्तके, पर्वत के मस्तक अर्थात् शिखर पर। सुप्तम् = सोये हुये को। प्रमत्तम् = बहुत अधिक मत्त को; प्र √मद् + क्त + पुंल्लिग द्वितीया वि०, एकवचन। विषमस्थितम् = विषमे स्थितम्, विपत्ति में स्थित अर्थात् विपत्तिग्रस्त अथवा नीचे-ऊँचे प्रदेश में स्थित। विषम = विपत्ति अथवा नीचा-ऊँचा प्रदेश। उपेन्द्रवज्रा छन्द।

या साधूँश्च खलान् करोति विदुषो मूर्खान् हितान् द्वेषिणः
प्रत्यक्षं कुरुते परोक्षममृतं हलाहलं तत्क्षणात्।
तामाराधय सत्क्रियां भगवतीं भोक्तुं फलं वाञ्छितं
हे साधो ! व्यसनैर्गुणेषु विपुलेष्वास्थां वृथा मा कृथाः ॥६९॥

अन्वयः—हे साधो, या खलान् साधून् करोति, मूर्खान् च विदुषः द्वेषिणः हितान्, परोक्षं प्रत्यक्षम् कुरुते, हलाहलं तत्क्षणात् अमृतं कुरुते, वाञ्छितं फलं भोक्तुं तां भगवतीं सत्क्रियाम् आराधय ! व्यसनैः विपुलेषु गुणेषु वृथा आस्था मा कृथाः।

अनुवाद—हे सज्जन, जो दुष्टों को सज्जन बनाती है, मूर्खों को विद्वान्, शत्रुओं को हितैषी, परोक्ष को प्रत्यक्ष बनाती है, हलाहल विष को तुरन्त अमृत बना देती है, इष्ट फल का भोग करने के लिये उस देवी सत्-क्रिया (अच्छे कर्म) की आराधना करो, व्यसनों के कारण बहुत से गुणों पर व्यर्थ श्रद्धा मत करो।

टिप्पणी—हे साधो = हे सज्जन। खलान् = दुष्टों को। विदुषः = विद्वान्ः, विद्वस् + द्वितीया वि०, बहुवचन। द्वेषिणः = शत्रुओं को, √द्वेष् + इनि = द्वेषिन् + द्वितीया वि०, बहुवचन—द्वेषिणः। हितान् = हितैषी, हितकारी, मित्र। परोक्षम् = अक्ष्णोः परम्, जो इन्द्रियों के सामने न हो। हलाहलम् = कालकूट

विष को, हलाहल विष उस भयंकर विष का नाम है जो समुद्र मथने के समय निकला था और समस्त लोक को भस्म करने लगा था। देवताओं की प्रार्थना से शिव ने इसे अपने कण्ठ में धारण किया था। तत्क्षणात्=उसी क्षण, तुरन्त वाञ्छितम्=इष्ट, चाहे हुये; √वाच्छ्+√क्त+नपुंसकलिंग, द्वितीया वि०; एकवचन। भोक्तुम्=भोगने के लिये; √भुज्+तुमुन्। भगवतीम्=देवी (सत्क्रिया) को। सत्क्रिया=सत्यकर्म, अच्छे कर्म। आराधय=आराधना करो अर्थात् (अच्छे कर्म) करो। व्यसनैः=आसक्तियों के कारण। विपुलेषु=बहुत अधिक (गुणों) के प्रति। वृथा=व्यर्थ। आस्थाम्=श्रद्धा। कृथाः=करो √कृ+लुङ् लकार, मध्यम पुरुष, एकवचन, मा के योग में अट् (अ) का आगम नहीं हुआ है। शार्दूलविक्रीडित छन्द।

गुणवदगुणवद् वा कुर्वता कार्यमादौ
परिणतिरवधार्या यत्नतः पण्डितेन।
अतिरभसकृतानां कर्मणामाविपत्ते-
र्भवति हृदयदाही शल्यतुल्यो विपाकः॥१००॥

अन्वयः—पण्डितेन गुणवत् अगुणवत् वा कार्यं कुर्वता आदौ यत्नतः परिणतिः अवधार्या। अति-रभसकृतानां कर्मणां विपाकः आविपत्तेः शल्य-तुल्यः; हृदय-दाही भवति।

अनुवाद—पण्डित को गुण से युक्त या गुण-रहित (अर्थात् भले या बुरे) काम को करते हुए पहले यत्नपूर्वक उसका परिणाम सोच लेना चाहिये। अत्यन्त शीघ्रता से किये हुये कर्मों का फल मृत्यु-पर्यन्त काटे (या बाण के फल) के समान हृदय को जलाने वाला होता है।

टिप्पणी—गुणवत्=गुणयुक्त अर्थात् अच्छा। अगुणवत्=गुण-रहित अर्थात् बुरा। कुर्वता=करते हुये, √कृ+शतृ+पुंल्लिग, तृतीया वि०, एकवचन। आदौ=पहले। यत्नतः=यत्नपूर्वक, यत्न+तसिल् (तस्)। परिणतिः=फलः; परि√नम्+क्ति+स्त्रीलिंग, प्रथमा वि०, एकवचन। अवधार्या=सोची जानी

चाहिये, निश्चित किया जाना चाहिये; अव $\sqrt{}$धृ + ण्यत् + टाप् + प्रथमा वि०; एकवचन । [illegible] — अतिरभसेन कृतानाम्, अत्यन्त शीघ्रता से किये हुये (कर्मों) का । रभस = वेग, शीघ्रता । विपाकः = फल; वि $\sqrt{}$पच् + घञ् + पुंल्लिङ्ग, प्रथमा वि०, एकवचन । आविपत्तेः = मृत्यु पर्यन्त । विपत्ति = मृत्यु; वि $\sqrt{}$पद् + क्तिन् । शल्यतुल्यः = कांटे या बाण की नोक के समान । हृदय० — हृदय को जलाने वाला अर्थात् पीडित करने वाला; हृदय + $\sqrt{}$दह् + णिनि + पुंल्लिङ्ग, प्रथमा विभक्ति, एकवचन । मालिनी छन्द ।

स्थाल्यां वैदूर्यमय्यां पचति च लशुनं चन्दनैरिन्धनाद्यैः
सौवर्णैर्लाङ्गलाग्रैर्विलिखति वसुधामर्कमूलस्य हेतोः ।
कृत्वा कर्पूरखण्डान् वृत्तिमिह कुरुते कोद्रवाणां समन्तात्
प्राप्येमां कर्मभूमिं न चरति मनुजो यस्तपो मन्दभाग्यः ॥१०१॥

अन्वयः — यः मन्दभाग्यः मनुजः इमां कर्मभूमिं प्राप्य इह तपो न चरति सः वैदूर्यमय्यां स्थाल्यां चन्दनैः इन्धनाद्यैः लशुनं पचति, सौवर्णैः लाङ्गलाग्रैः अर्कमूलस्य हेतोः वसुधां विलिखति; कर्पूर-खण्डान् कृत्वा कोद्रवाणां समन्तात् वृत्तिं कुरुते ।

अनुवाद — जो मन्द-भाग्य पुरुष इस कर्मभूमि (संसार) को प्राप्त करके तप नहीं करता वह वैदूर्यमणि की बनी बटलोई में चन्दन आदि ईंधनों से लहसुन पकाता है, सोने के बने हुये हल के अग्रभागों (=फलों) से आके की जड़ के लिये पृथ्वी को जोतता है, कपूर के टुकड़े करके कोदों के चारों ओर रक्षा के लिये घेरा बनाता है ।

टिप्पणी — मन्दभाग्यः = मन्दं भाग्यं यस्य सः; मन्द भाग्य वाला । कर्मभूमिम् = कर्मणः भूमिम्, कर्म की भूमि अर्थात् संसार को । चरति = करता है । वैदूर्यमय्यां = वैदूर्य मणि से बनी हुई (बटलोई) में । स्थाल्याम् = बटलोई में, हण्डी । सप्तमी वि०, एकवचन । लशुनम् = लहसुन को । पचति = पकाता

है। सौवर्णैः=सुवर्ण से बने हुए (हल के फलों) से; सुवर्ण+अण्—सौवर्ण, +नपुंसकलिंग, तृतीया वि०, बहुवचन। लाङ्गलाग्रैः=लाङ्गलानाम् अग्रैः, हलों के अग्रभागो अर्थात् फलों से। लाङ्गल=हल। अर्कमूलस्य=अर्कस्य मूलस्य, आक की जड़ के। हेतोः=लिये। वसुधाम्=पृथिवी को। विलिखति=खोदता है। कर्पूर०=कर्पूरस्य खण्डान्, कपूर के टुकड़ों को। कोद्रवाणम्=कोदों के, कोदों एक प्रकार का निम्न कोटि का अन्न है। समन्तात्=चारों ओर। वृत्तिम्=(रक्षा के लिये) घेरा; √वृ+क्तिन्+स्त्रीलिंग द्वितीया वि०; एकवचन।

पाठभेद—प्रथम चरण में 'पचति च लशुनं चन्दनैरिन्धनाद्यैः' की जगह 'पचति तिलकणानिन्धनैश्चन्दनाद्यैः' है। इसका अर्थ 'चन्दन आदि ईंधनों से तिलों का कण पकाता है'। इसी चरण में 'इन्दनाद्यैः' की जगह 'इन्धनोघैः पाठ भी है जिसका अर्थ है—ईंधन के समूहों से। स्रग्धरा छन्द।

मज्जत्वम्भसि यातु मेरुशिखरं शत्रूञ्जयत्वाहवे
वाणिज्यं कृषिसेवनादि सकलाः विद्याः कलाः शिक्षतु।
आकाशं विपुलं प्रयातु खगवत् कृत्वा प्रयत्नं परं
नाभाव्यं भवतीह कर्मवशतो भाव्यस्य नाशः कुतः॥१०२॥

अन्वयः—(पुरुषः) अम्भसि मज्जतु, मेरु-शिखरं यातु, आहवे शत्रून् जयतु, वाणिज्यं कृषि सेवनादि सकलाः विद्याः कलाः शिक्षतु, परं प्रयत्नं कृत्वा खगवत् विपुलम् आकाशं प्रयातु, इह कर्मवशतः अभाव्यं न भवति; भाव्यस्य नाशः कुतः।

अनुवाद—मनुष्य चाहे जल में गोता लगाये, मेरु (पर्वत) की चोटी पर चला जाये, युद्ध में शत्रुओं को जीत ले, व्यापार, खेती और सेवा आदि सभी विद्यायें (और) कलायें सीख ले, बहुत अधिक प्रयत्न करके पक्षी के समान विशाल आकाश में चला जाये, यहाँ (इस संसार में) कर्मों के वश अनहोनी नहीं होती (और) होनी का नाश कहाँ ? (अर्थात् होनी अवश्य होती है)।

टिप्पणी—अम्भसि=जल में । मज्जतु=गोता लगाये, डूब जाये । मेरु०=मेरो, शिखरम्, मेरु पर्वत की चोटी पर । यातु=चला जाये । आहवे=युद्ध में । वाणिज्यम्=व्यापार को । कृषि०=खेती, सेवा कार्य आदि । शिक्षतु=सीख ले । परम्=बहुत अधिक । खगवत्=पक्षी के समान । विपुलम्=विशाल । प्रयातु=चला जाये । कर्मवशतो०=कर्म के वश । भाव्यम्=न भाव्यम् जो होना न हो, अनहोनी । भाव्यस्य=होनी का । भाव्य—√भू+ण्यत । नाशः—√नश+घञ्+पुंल्लिग, प्रथमा वि०, एकवचन । कुतः=कहाँ; किम्+तसिल् । शार्दूलविक्रीडित छन्द ।

भीमं वनं भवति तस्य पुरं प्रधानं,
सर्वो जनाः सुजनतामुपयान्ति तस्य ।
कृत्स्ना च भूर्भवति सन्निधिरत्नपूर्णा,
यस्यास्ति पूर्वसुकृतं विपुलं नरस्य ॥१०३॥

अन्वयः—यस्य नरस्य विपुलं पूर्वसुकृतम् अस्ति, तस्य भीमं वनं प्रधानं पुरं भवति, सर्वे जनाः तस्य सुजनताम् उपयान्ति, कृत्स्ना च भूः सन्निधिरत्नपूर्णा भवति ।

अनुवाद—जिस पुरुष का बहुत अधिक पहले का (पूर्व जन्म का) पुण्य होता है उसके लिये भयानक वन प्रधान नगर हो जाता है, सब लोग उसके लिये सज्जन बन जाते हैं और सम्पूर्ण पृथिवी अच्छे खजानों से और रत्नों से पूर्ण हो जाती है ।

टिप्पणी—विपुलम्=बहुत अधिक । पूर्वसुकृतम्=पूर्वं सुकृतम्, पहले अर्थात् पूर्व जन्म के अच्छे कार्य (पुण्य) । भीमम्=भयानक । पुरम्=नगर । सुजनताम्=सज्जनता को । उपयान्ति=प्राप्त होते हैं । कृत्स्ना=सम्पूर्ण । भूः=पृथिवी । सन्निधि=सन्तः निधयः, सन्निधयः, सन्निधयः, रत्नानि च सन्निधिरत्नानि, तैः पूर्णा सन्निधिरत्नपूर्णा, अच्छे खजानों और रत्नों से भरी हुई ।

पाठभेद—द्वितीय पंक्ति में 'सर्वेजनाः' के स्थान पर 'सर्वः जनोः' पाठ भी है । अर्थ वही होगा । वसन्ततिलका छन्द ।

को लाभो गुणिसङ्गमः किमसुखं प्राज्ञेतरैः सङ्गतिः,
का हानिः समयच्युतिर्निपुणता का धर्मतत्त्वे रतिः ।
कः शूरो विजितेन्द्रियः प्रियतमा काऽनुव्रता किं धनं,
विद्या किं सुखमप्रवासगमनं राज्यं किमाज्ञाफलम् ॥१०४॥

अन्वयः—लाभः कः ? गुणिसङ्गमः । असुखम् किम् ? प्राज्ञेतरैः सङ्गतिः हानि का ? समय च्युतिः । निपुणता का ? धर्मतत्त्वे रति । शूरः कः ? विजितेन्द्रियः । प्रियतमा का ? अनुव्रता । धनं किम् ? विद्या । सुखं किम् ? अप्रवासगमनम् । राज्यं किम् ? आज्ञा-फलम् ।

अनुवाद—लाभ क्या है ? गुणियों की संगति । दुःख क्या है ? मूर्खों की संगति । हानि क्या है ? समय (अवसर) से चूक जाना । निपुणता क्या है ? धर्म तत्त्व में अनुराग । शूर कौन है ? इन्द्रियों को जीतने वाला । प्रियतमा कौन है ? अनुकूल (स्त्री) । धन क्या है ? विद्या । सुख क्या है ? देश से बाहर न जाना । राज्य क्या है ? आज्ञा रूपी फल (अर्थात् आज्ञा देने की शक्ति) ।

टिप्पणी—लाभः = √लभ् + घञ् + पुंलिंग, प्रथमा वि०, बहुवचन । गुणि० = गुणिभिः सह संगमः, गुणियों का साथ । असुखम् = सुखरहितता अर्थात् दुःख । प्राज्ञेतरैः = प्राज्ञेभ्यः इतरैः, बुद्धिमानों से भिन्न, मूर्ख । प्राज्ञ = बुद्धिमान्, प्र √ज्ञ + क = प्रज्ञ, प्रज्ञ + अण् = प्राज्ञ । हानिः = √हा + क्तिन् + प्रथमा वि०, एकवचन । समय० = समयात् च्युतिः, समस्य च्युतिः वा, समय अर्थात् अवसर के चूक जाना अथवा अवसर का बीत जाना । रतिः = अनुराग, प्रेम; √रम् + क्तिन् स्त्रीलिंग प्रथमा वि०, एकवचन । विजितेन्द्रिय = विजितानि इन्द्रियाणि येन सः, जिसने इन्द्रियों को जीत लिया है । अनुव्रता = अनुकूल स्त्री । अप्रवास० = प्रवास अर्थात् अपने देश से बाहर न जाना । आज्ञा० = आज्ञा एव फलम्, आज्ञा रूपी फल अर्थात् आज्ञा देने की शक्ति रूप फल की प्राप्ति । शार्दूलविक्रीडित छन्द ।

मालतीकुसुमस्येव द्वे गती स्तो मनस्विनः ।
मूर्ध्नि वा सर्वलोकस्य शीर्यते वन एव वा ॥१०५॥

अन्वयः—मालती कुसुमस्य इव मनस्विनः द्वे गती स्तः, सर्वलोकस्य मूर्ध्नि वने एव वा शीर्यते ।

अनुवाद—मालती के फूल के समान मनस्वी (पुरुष) की दो (ही) गतियाँ होती हैं—(या तो वह) सब लोगों के सिर पर (रहता है) अथवा वन में ही नष्ट हो जाता है ।

टिप्पणी—मनस्विनः = मनस्वी की । सर्व० = सब लोगों के । मूर्ध्नि = सिर पर । शीर्यते = नष्ट हो जाता है । पाठ-भेद—'गती स्तो' के स्थान पर 'गतीह' पाठ भी है । इह = इस संसार में । अनुष्टुप् छन्द ।

अप्रियवचनदरिद्रैः प्रियवचनाढ्यैः स्वदारपरितुष्टैः ।
परपरिवादनिवृत्तैः क्वचित्क्वचिन्मण्डिता वसुधा ॥१०६॥

अन्वयः—अप्रिय-वचन दरिद्रैः प्रिय-वचनाढ्यैः स्वर-दार-परितुष्टैः पर-परिवाद-निवृत्तैः (जनैः) वसुधा क्वचित् क्वचित् मण्डिता ।

अनुवाद—अप्रिय वचनों के दरिद्र, प्रिय वचनों के धनी, अपनी पत्नी से सन्तुष्ट, दूसरों की निन्दा से विमुख लोगों से पृथिवी कहीं-कहीं पर (ही) शोभित है ।

टिप्पणी—अप्रिय० = अप्रियैः वचनैः दरिद्राः अप्रियवचनदरिद्राः, तैः अप्रिय वचनों से दरिद्र अर्थात् दूसरों को अप्रिय लगने वाले वचनों को न बोलने वालों से । प्रिय० = प्रियैः वचनैः आढ्याः प्रियवचनाढ्याः, प्रिय वचनों से धनी अर्थात् नित्य प्रिय वचन बोलने वालों से । आढ्य = धनी । स्वदार० = स्वदारैः परितुष्टाः स्वदारपरितुष्टाः तैः, अपनी पत्नी से सन्तुष्ट रहने वालो से । पर० = परेषां परिवादात् निवृत्तैः, दूसरों की निन्दा से विमुख (लोगों) से । परिवाद = निन्दा; परि √ वद् + घञ् । निवृत्त = हटा हुआ, विमुख; नि √ वृत् + क्त । वसुधा = पृथिवी । मण्डिता = अलंकृत, सुशोभित; √ मण्ड् + क्त + टाप् + प्रथमा वि, एकवचन । आर्या छन्द ।

कदर्थितस्यापि हि धैर्यवृत्ते-
र्न शक्यते धैर्यगुणाः प्रमार्ष्टुम् ।
अधोमुखस्यापि कृतस्य वह्ने-
र्नाधः शिखा याति कदाचिदेव ॥१०७॥

अन्वयः—कदर्थितस्यापि धैर्यवृत्तेः धैर्यगुणाः प्रमार्ष्टुम् न हि शक्यते । अधो-मुखस्य कृतस्य अपि वह्नेः शिखा कदाचित् एव अधः न याति ।

अनुवाद—तिरस्कृत (या पीड़ित किये हुए) भी धैर्य स्वभाव वाले (मनुष्य) के धैर्य-गुण मिटाये नहीं जा सकते । नीचे की ओर मुख की हुई भी अग्नि की शिखा कभी भी नीचे की ओर नहीं की जा सकती ।

टिप्पणी—कदर्थितस्य=तिरस्कृत या पीड़ित (धैर्यवान् मनुष्य) के । कदर्थ+इतच्+पुंल्लिग षष्ठी वि०, एकवचन । अथवा कदर्थ+क्त+पुंल्लिग; षष्ठी वि०, एकवचन । धैर्य०=धैर्य वृत्ति यस्य तस्य, धैर्य स्वभाव वाले अथवा धैर्य युक्त आचरण वाले (मनुष्य) का ; धैर्य=धीर+ण्यत् । वृत्ति=स्वभाव, आचरण, व्यवहार; वृत्+क्तिन् । प्रमार्ष्टुम्=मिटाने के लिये; प्र√मृज्+तुमुन् । अधो०=अधः मुखं यस्य तस्य, नीचे की ओर मुख वाली (अग्नि) की । वह्नेः=अग्नि की । कदाचिदेव=कभी भी । अधः=नीचे की ओर । उपजाति छन्द ।

कान्ताकटाक्षविशिखाः न दहन्ति यस्य,
चित्तं न निर्दहति कोपकृशानुतापः ।
कर्षन्ति भूरिविषयाश्च न लोभपाशैः,
लोकत्रयं जयति कृत्स्नमिदं स धीरः ॥१०८॥

अन्वयः—यस्य चित्तं कान्ता-कटाक्ष-विशिखाः न दहन्ति, कोपकृशानुतापः न निर्दहति, भूरि-विषयाः च लोभ-पाशैः न कर्षन्ति, सः धीरः इदं कृत्स्नं लोक-त्रयं जयति ।

अनुवाद—जिसके चित्त को स्त्रियों के कटाक्ष रूपी बाण जलाते नहीं हैं; क्रोध रूपी अग्नि का ताप तपाता नहीं है और अनेक विषय लोभ रूपी बन्धनों से खींचते नहीं हैं, वह धीर पुरुष इस सम्पूर्ण तीनों लोकों के समुदाय को जीत लेता है।

टिप्पणी—कान्ता० = कान्तायाः कटाक्षाः एव विशिखाः (बाणाः) स्त्री के कटाक्ष रूपी बाण। विशिख = विशिष्टा शिखा यस्य, बाण। दहन्ति = जलाते हैं। कोप० = कोपः एव कृशानुः (अग्निः) कोपकृशानुः तस्य तपः, कोप रूपी अग्नि का ताप। कोधः = क्रोध, √कुप् + घञ्। कृशानु = अग्नि, √कृश् + आनुक्। ताप = गरमी; √तप् + घञ्। भूरि = अनेक विषय। लोभ० = लोभः एव पाशाः तैः, लोभ रूपी बन्धनों से। कर्षन्ति = खींचते हैं। कृत्स्नम् = सम्पूर्ण। लोकत्रयम् = लोकानां त्रयम्, तीनों लोकों के समुदाय को। पाठ भेद—प्रथम चरण में। 'दहन्ति' के स्थान पर 'लुनन्ति' पाठ भी मिलता है, इसका अर्थ है छेदते हैं या विदीर्ण करते हैं। वसन्ततिलका छन्द।

एकेनापि हि शूरेण पादाक्रान्तं महीतलम्।
क्रियते भास्करेणेव परिस्फुरिततेजसा ॥१०९॥

अन्वयः—परिस्फुरिततेजसा भास्करेण इव एकेन अपि हि शूरेण महीतलं पादाक्रान्तं क्रियते।

अनुवाद—दैदीप्यमान तेज वाले सूर्य के समान एक ही शूर पृथिवी-तल को पादों से (= सूर्य-पक्ष में किरणों से; शूर-पक्ष में चरणों से) आक्रान्त कर लेता है।

टिप्पणी—परिस्फुरित० = परिस्फुरितं तेजो यस्य तेन, दैदीप्यमान तेज वाले (सूर्य) के द्वारा। भास्करेण = सूर्य के द्वारा। शूरेण = वीर के द्वारा। महीतलम् = पृथ्वी-तल को। पादाक्रान्तम् = पादैः आक्रान्तम्; पादों से (सूर्य पक्ष में किरणों से, शूर पक्ष में चरणों से) आक्रान्त। पाद = किरण, चरण। आक्रान्तं = व्याप्त, वशीभूत; आ√क्रम् + क्त। भाव यह है कि जिस प्रकार एक ही दैदीप्यमान तेज सम्पूर्ण पृथ्वी-तल को अपनी किरणों से व्याप्त कर

लेता है, उसी प्रकार एक ही तेजस्वी वीर सम्पूर्ण पृथ्वी को अपने चरणों से अपने वश में कर लेता है। पाठभेद—चतुर्थ चरण में 'परिस्फुरित०' के स्थान पर 'स्फारस्फुरित' पाठ भी है। स्फार का अर्थ है बहुत अधिक। अनुष्टुप् छन्द।

वह्निस्तस्य जलायते जलनिधिः कुल्यायते तत्क्षणात्,
मेरुः स्वल्पशिलायते मृगपतिः सद्यः कुरङ्गायते।
व्यालो माल्यगुणायते विषरसः पीयूषवर्षायते,
यस्याङ्गेऽखिललोकवल्लभतमं शीलं समुन्मीलति ॥११०॥

अन्वयः—यस्य अङ्गे अखिल-लोक-वल्लभतमं शीलं समुन्मीलति तस्य वह्निः जलायते, जलनिधिः तत्क्षणात् कुल्यायते, मेरुः स्वल्पशिलायते, मृगपतिः सद्यः कुरङ्गायते, व्यालः माल्यगुणायते, विषरसः पीयूषवर्षायते।

अनुवाद—जिसके अङ्ग में सब लोगों का सबसे अधिक प्रिय शील प्रकट होता है उसके लिये अग्नि जल बन जाती है, समुद्र छोटी नहर बन जाता है, मेरु (पर्वत) छोटी सी शिला बन जाता है, सिंह तुरन्त हिरन बन जाता है, साँप माला की डोरी बन जाता है और विष अमृत की वर्षा बन जाता है।

टिप्पणी—अङ्गे=अङ्ग में अर्थात् शरीर में। अखिल०=अखिललोकस्य वल्लभतमम्, सभी लोगों को सबसे अधिक प्रिय। वल्लभ=प्रिय। शील=सत् स्वभाव, सदाचार। समुन्मीलति=प्रकट होता है। वह्नि=अग्नि। जलायते=जलम् इव आचरति, जल के समान हो जाता है। जलनिधिः=जलस्य निधिः; समुद्र। कुल्यायते=कुल्या इव आचरति, छोटी नहर के समान हो जाता है। कुल्या=छोटी नहर। स्वल्प०=स्वल्पशिला इव आचरति, छोटी शिला के समान हो जाता है, नामधातु। मृगपतिः=मृगानां पतिः; पशुओं का स्वामी, सिंह। सद्यः=तुरन्त। कुरङ्गायते=कुरङ्ग इव आचरति, हिरन के समान हो जाता है; नामधातु। व्यालः=सर्प। माल्य०=माल्यगुणम् इव आचरति, माला की डोरी के समान हो जाता है, नामधातु। माल्यगुण=माला की डोरी। गुण =डोरी। विषरसः=विष; पीयूष०=पीयूषस्य वर्षा पीयूषवर्षा, सा इव आचरति, अमृत की वर्षा हो जाती है, नामधातु। पीयूष=अमृत। शार्दूल-विक्रीडित छन्द।

लज्जागुणौघजननीं जननीमिव स्वाम्
अत्यन्तशुद्धहृदयाम् अनुवर्तमानाम्।
तेजस्विनः सुखमसूनपि सन्त्यजन्ति
सत्यव्रतव्यसनिनो न पुनः प्रतिज्ञाम् ॥१११॥

अन्वयः—सत्यव्रत-व्यसनिनः तेजस्विनः असून् अपि सुखं सन्त्यजन्ति, पुनः अत्यन्त-शुद्धहृदयानाम् अनुवर्तमानां स्वां जननीम् इव लज्जागुणौघजननीम् प्रतिज्ञां न त्यजन्ति।

अनुवाद—सत्यव्रत के प्रेमी (और) तेजस्वी लोग प्राणों को भी सुख से त्याग देते हैं किन्तु अत्यन्त शुद्ध हृदय वाली और अनुकूल आचरण वाली माता के समान लज्जा आदि गुण-समूह को उत्पन्न करने वाली प्रतिज्ञा को नहीं त्यागते।

टिप्पणी—सत्य० = सत्यव्रतम् एव व्यसनम् सत्यव्रतव्यसनम् तत् अस्ति एषाम् इति सत्यव्रतव्यसनिनः, सत्यव्रत के शौकीन या प्रेमी सत्यव्रतव्यसन + इनि + पुंल्लिग प्रथमा वि०, एक०। तेजस्विनः = तेजस्वी लोग, तेजस् + विनि + पुंल्लिग, प्रथमा वि०, बहुवचन। असून् = प्राणों को। सुखम् = सुख से, आसानी से। पुनः = किन्तु। अत्यन्त० = अत्यन्तं शुद्धं हृदयं यस्याः ताम् अत्यन्त शुद्ध हृदय वाली। अनुवर्तमानम = अनुकूल आचरण करने वाली। जननीम् = माता। लज्जा० = लज्जागुणानाम् ओघस्य जननीम्, लज्जा आदि गुण-समूह को उत्पन्न करने वाली। ओघ = समूह। वसन्ततिलका छन्द।

इति शुभम्

544015

रा△ट पती

रा△ट पती

रा△ट पति